अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00
❑ अंक : 12
❑ 1-15 फरवरी, 2014
❑ वर्ष : 37

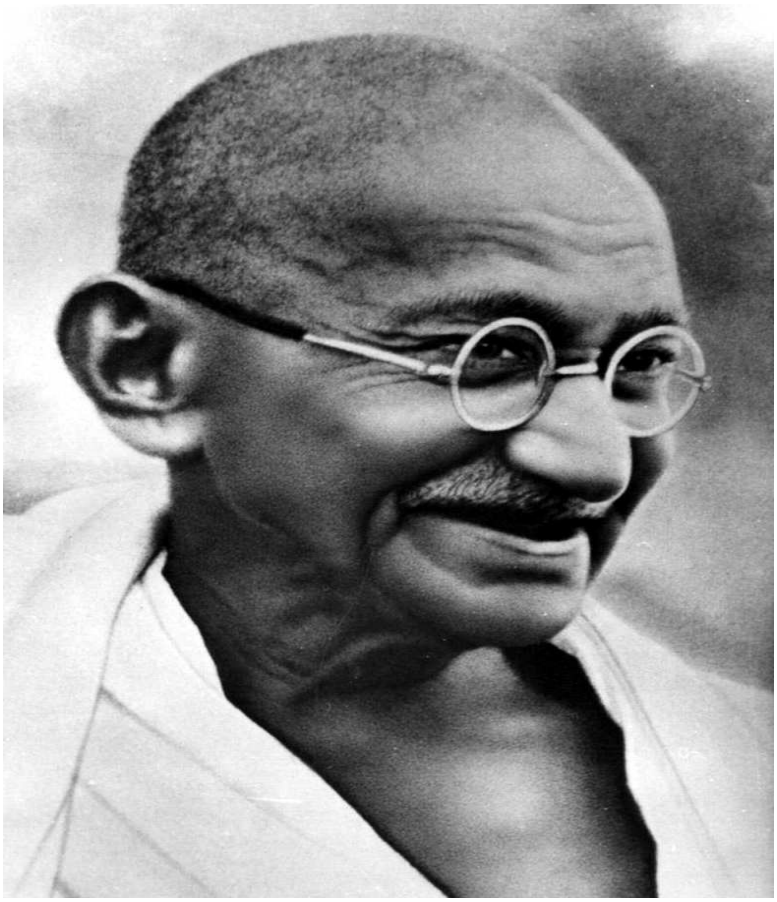

अर्थविद्या और नीतिविद्या

मैं अर्थविद्या और नीतिविद्या में कोई भेद नहीं करता। जिस अर्थविद्या से व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि पहुंचती हो, उसे मैं अनीतिमय और पापपूर्ण कहूंगा। उदाहरण के लिए, जो अर्थविद्या किसी दूसरे देश का शोषण करने की अनुमति देती है, वह अनैतिक है। जो मजदूरों को योग्य मेहनताना नहीं देते और उनके परिश्रम का शोषण करते हैं, उनसे वस्तुएं खरीदना या उन वस्तुओं का उपयोग करना पापपूर्ण है।

('मेरे सपनों का भारत' से)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 12
1-15 फरवरी, 2014

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल: sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविता : मौका देकर... 2
2. चुनाव और लोकसत्ता... 3
3. राजनीति का शुद्धिकरण... 4
4. समग्र एवं मजबूत हिमालय... 5
5. भूमंडलीकरण के दौर में... 7
6. गांधी के बाद अहिंसक... 9
7. गांधी की सलाह मानी... 11
8. बाली बैठक : निजीकरण... 12
9. स्वास्थ्य के अधिकार का... 13
10. डिप्रेशन में डूबता भारत... 15
11. वृद्धा पेंशन : एक मानवीय... 16
12. क्रान्तदर्शी अच्युत पटवर्धन... 17
13. गतिविधियां एवं समाचार... 19
14. बाबा आमटे की दो कविताएं 20

मौका देकर देखिये दोनों की औक़ात

–केशव शरण

सबकी क़िस्मत में नहीं, द्रुततर जम्बो जेट
सारी ट्रेनें लेट हैं, अपनी सबसे लेट

ख़ून जलाते धूप में, जाने कितने लोग
तब लेता इक आदमी, ए सी का सुखभोग

एक अलीबाबा नहीं, इस दुनिया में यार
चोर कभी चालीस थे, अब इनकी भरमार

जनता है, सरकार है, न्यायालय, अख़बार
करने वाले कर रहे, खुलकर भ्रष्टाचार

कर डाला है क्या अजब, काले धन ने हाल
बैंक विदेशी भर गये, देश हुआ कंगाल

ऐसे तो दिखते बहुत, सत्तामद में चूर
जन सेवा के नाम पर, हो जाते मजबूर

केवल भ्रष्टाचार पर, फरमाइये न ग़ौर
सामाजिक अन्याय भी, इक मुद्दा है और

कोई हंगामा नहीं, मान रहे निःशंक
लेकिन ऐसा मत कहें, व्याप्त नहीं आतंक

किया आधुनिक वक़्त ने, यही महान विकास
जल, जंगल व ज़मीन का, नष्ट-भ्रष्ट विन्यास

कोख भरी इस बात पर, ले आशंका घोर
भ्रूण परीक्षण में यहां, तनिक न लगती देर

कमतर कैसे मर्द से, यह औरत की जात
मौक़ा देकर देखिये, दोनों की औक़ात

❑ *एस 2/564, सिकरौल, वाराणसी-221002, मो. 9415295137*

संपादकीय

चुनाव और लोकसत्ता

जब चुनाव का समय आता है, तो बहुत से आंदोलनकारी धाराएं चुनाव में शामिल होने का तर्क गढ़ने लगती हैं। इन्हें लगता है कि जिस परिवर्तन के लाने के लिए वे आंदोलन करते रहे हैं, वह कार्य चुनाव के बाद सुगम हो जायेगा।

यह बात उन आंदोलनकारी धाराओं के लिए एक सही रणनीति हो सकती है जो राजसत्ता के माध्यम से परिवर्तन करना चाहती हैं। अर्थात् यह मानती हैं कि परिवर्तन के कार्य के लिए निर्णय लेने तथा उसका क्रियान्वयन करने में जनता की प्रत्यक्ष भागीदारी बहुत कम है। खुशहाली लाने तथा पहुंचाने का काम राजसत्ता करेगी। ऐसा कर वे राजसत्ता को और मजबूत करने का काम करते हैं।

विकास कोई ऐसी प्रक्रिया नहीं है जो राजसत्ता द्वारा जनता को दिया जायेगा या दिया जा सकता है। वस्तुतः 'विकास' की अवधारणा पूंजीवाद के बदलते स्वरूप में तब उभर कर आयी जब दुनिया भर के उपनिवेश 1945 के बाद एक-एक कर स्वतंत्र होते गये। पूंजीवाद का प्रथम दौर उपनिवेश बनाने का था। उपनिवेश के माध्यम से नियंत्रण, शोषण व दोहन के काम को जायज ठहराने के लिए पूंजीवादी शासक राष्ट्रों ने उपनिवेशों को असभ्य एवं जंगली कहा तथा पूंजीवादी शोषण को लादने की प्रक्रिया को इन समाजों को सभ्य बनाने का काम कहा गया। उसके बाद इन समाजों को पिछड़ा, अवैज्ञानिक, अंधविश्वासी एवं रूढ़िवादी कहा गया। तब पूंजीवादी विस्तार को इन शासकों ने इन्हें विकसित, वैज्ञानिक व तर्कयुक्त दृष्टि वाला बनाने का काम कहा।

जब ये उपनिवेश स्वतंत्र हुए तब इन्हें 'अविकसित' या 'कम विकसित' कह कर पूंजीवाद की वैश्विक व्यवस्था में अपनी जनता का शोषण करते रहने की नीति को आवश्यक बताया जाने लगा। पहले यह कहा गया कि विकास का कार्य राजसत्ता के माध्यम से होगा, फिर 1980 के दशक के बाद ये माहौल बनाया जाने लगा कि राजसत्ताएं असफल हो रही हैं, अतः विकास का कार्य 'पूंजीवादी बाजार' के माध्यम से होगा तथा राजसत्ता की भूमिका पूंजीवादी बाजार को मजबूत करने की होगी।

असभ्य, पिछड़े, अंधविश्वासी, अविकसित जैसी अवधारणाओं के विचार-इतिहास की विरासत विकास की अवधारणा है। इस वैचारिक निरंतरता को खारिज करने तथा उसका विकल्प प्रस्तुत करने का काम केवल गांधी एवं गांधी-विचार को मानने वालों ने किया। यह विकास की अवधारणा लोक-स्वामित्व, लोक-स्वराज्य एवं लोक-सम्प्रभुता की अवधारणा के विरोध में खड़ी है। इस विकास के अंतर्गत लोगों को (श्रमिक-उत्पादकों को) उत्पादन के साधनों से निरंतर वंचित व बेदखल किया गया। पहले यह औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में हुआ। अब जल-जंगल-जमीन, खनिज जैसे प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों से उन समुदायों को बेदखल किया जा रहा है जो सदियों से इनसे जुड़े रहे हैं। पहले श्रम को पूंजीवादी बाजार के दायरे में लाया गया। अब जल-जंगल-जमीन-खनिज व प्रकृति प्रदत्त अन्य स्रोतों को बाजार के दायरे में लाया जा रहा है।

राजसत्ता के माध्यम से इस विकास-प्रक्रिया को नहीं बदला जा सकता है। सत्ताभिमुख परिवर्तनकारी शक्तियों ने यह भ्रम फैलाकर कि राजसत्ता में जाकर ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है, क्रांति के कार्य को बहुत बड़ा नुकसान पहुंचाया है। लोक स्वामित्व एवं लोक स्वराज्य को राजसत्ता के माध्यम से नहीं लाया जा सकता है। अब बात लोक सम्प्रभुता की। लोक को उत्पादनों के साधनों से और सम्प्रभुता से वंचित करने का जो पूंजीवादी अभियान था, उसका एक पहलू 'विकास' के रूप में प्रकट हुआ है। तो उसका दूसरा पहलू यह है कि शिक्षा व्यवस्था, शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, राज्य व्यवस्था आदि उपनिवेश काल में भी जनता के अधिकारों व साधनों से विरत करने के माध्यम थे और आज भी हैं।

इस पार्टी व्यवस्था से या चुनाव-व्यवस्था से सिर्फ एक फर्क आया है। वह यह कि ये स्वीकार करते हैं कि सम्प्रभुता लोक में निहित है। अतः शासन करने का अधिकार चुनाव के माध्यम से आयेगा। चुनाव शासन करने का अधिकार प्राप्त करने का माध्यम है, लोक की सम्प्रभुता को स्थापित करने का माध्यम नहीं है।

जैसे पूंजीवादी व्यवस्था एवं राज्य व्यवस्था श्रेणीबद्ध व्यवस्थाएं हैं, उसी प्रकार चुनावी पार्टी भी एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था होती है। लोक आंदोलन से लोक की सत्ता जरूर प्रकट होती है, लेकिन जैसे ही लोक आंदोलन से पार्टी बनती है, आंदोलन से उपजी शक्ति, पार्टी को मजबूत करती है, जनता को नहीं। उससे लोक संगठन नहीं बनता। पार्टी तो राजसत्ता एवं पूंजीवादी व्यवस्था के सहअस्तित्व में खड़ी रह सकती है, लेकिन लोक संगठन का संघर्ष राजसत्ता के साथ एवं पूंजीवादी व्यवस्था के साथ अपरिहार्य है। जो लोकसत्ता के निर्माण की बात करते हैं, लोक की सम्प्रभुता की बात करते हैं, उन्हें आंदोलनों के माध्यम से लोक संगठन के व लोक स्वराज्य के काम में निरंतर लगे रहना होगा। राजसत्ता के माध्यम से लोकसत्ता का निर्माण हो सकेगा या लोक सम्प्रभुता को स्थापित किया जा सकेगा—ऐसा कहना एक छलावा होगा, धोखा होगा। बिमल कुमार

राजनीति का शुद्धीकरण जरूरी

❑ विनोबा

यूरोप-अमेरिका में ख्रिस्ती धर्म (क्रिश्चियन) चलता है और ख्रिस्ती धर्म, अहिंसा और प्रेम को जितना वजूद देता है, उतना तो शायद ही और कोई धर्म देता होगा। वे लोग हर रविवार बाइबल को पढ़ते हैं। स्कूल में भी विद्यार्थियों को भाषा की दृष्टि से भी बाइबल ही सिखाई जाती हैं और वहां तो ईसा मसीह का नाम लिया जाता है। उसके लिए उत्सव होते हैं। और फिर साथ-साथ शस्त्र को भी बढ़ाया जाता है! इस बात का कैसे मेल बैठता है? कहते हैं कि बीच के समय के लिए ऐसा करना पड़ता है। समाज जब पूर्ण बनेगा, उस समय ऐसा नहीं करना पड़ेगा। ईशु का उपदेश पूर्णता का उपदेश है। यानी जब समाज पूर्ण बन जाएगा तब उसका लाभ मिलेगा। तब तक शस्त्रों को तो बढ़ाना ही पड़ेगा। तभी तो धर्म का रक्षण होगा। न्याय का, सत्य का रक्षण होगा। यानी ईशु के नाम से शस्त्र बढ़ा सकते हैं, लश्कर खड़ा किया जा सकता है, नये-नये शस्त्रों की खोज कर सकते हैं और उसके लिए वैज्ञानिकों को अपना जीवन अर्पण करना चाहिए।

आज के आज यदि ईशु की शिक्षा को अमल में लाना हो तो उसे आदमी के व्यक्तिगत जीवन में, लाया जा सकता है। परंतु सामाजिक दृष्टि से इसका पूर्ण अमल तो तभी होगा जब समाज पूर्ण बनेगा। व्यक्तिगत दृष्टि से कुछएक ही ऐसा कर सकते हैं। सब नहीं। फिर एक बात और, अहिंसा का जो शिक्षण है, उसका उपयोग आज के समाज में नहीं दिखता, लेकिन परलोक में उसका उपयोग दिखता है यानी मरने के बाद अहिंसा का उपयोग हो सकता है! यानी शस्त्रों का ईशु की शिक्षा के साथ कोई विरोध नहीं है। बस परलोक में उसका उपयोग है।

अपने हिन्दू लोग भी सिद्धांत में तो अद्वैत को मानते हैं, लेकिन व्यवहार में उन्हें जातिभेद चाहिए, अस्पृश्यता चाहिए। अलबत्ता विचार करते समय अद्वैत की और शुद्ध अद्वैत की बात करेंगे। एक कहेगा अद्वैत को शुद्ध अद्वैत तो दूसरा कहेगा शुद्ध अद्वैत, यानी कि अद्वैत को शुद्ध करें और उसमें से दोषों की कल्पना करते हुए उन्हें भी निकाल दें। इस प्रकार धर्म के मूलभूत विचार का ही उच्छेद होता है। ऐसा ही मुसलमान और बौद्ध-धर्म भी करते हैं।

''धर्म के विचार बीच वाले समय की दृष्टि से समाज के लिए काम के नहीं हैं। वे तो परलोक के लिए काम के हैं। व्यक्तिगत उन्नति के लिए थोड़े बहुत, दो चार लोगों के लिए आज भी काम के हैं, लेकिन समाज के लिए तो आज की दशा में वह शिक्षा काम में नहीं आने वाली! समाज जब पूर्णता की ओर पहुंचेगा तभी ये विचार काम में आएंगे।'' जिस प्रकार उन धार्मिकों की मान्यता है, उसी प्रकार की मान्यता सभी राजनीतिज्ञों की भी है। और उसी प्रकार का रुख यदि गांधी-विचार को मानने वाले भी अपनाएंगे, तब तो मुझे तोबा-तोबा ही कहना पड़ेगा। उसमें भी वह गांधी के नाम से चले तो मेरे मन में आता है कि धरती माता फट जायं और मुझे अपने भीतर ले लें, तो अच्छा।

प्रस्तुतिः डेनियल माझगांवकर

(15 दिसंबर, 1958, बलोल, गुजरात)

सर्व सेवा संघ का वार्षिक अधिवेशन

सर्व सेवा संघ (अखिल भारत सर्वोदय मंडल) का वार्षिक अधिवेशन 1 एवं 2 मार्च, 2014 (शनिवार एवं रविवार) को महात्मा गांधीजी के आश्रम, सेवाग्राम (महाराष्ट्र) में हो रहा है।

डॉ. अभय बंग एवं किसान नेता श्री विजय जावंधिया अधिवेशन के विशिष्ट अतिथि होंगे।

समसामायिक विषयों तथा भावी कार्यक्रम पर चर्चा होगी एवं सर्व सेवा संघ के नये अध्यक्ष का चयन होगा।

सभी लोकसेवकों एवं सर्वोदय मित्रों से निवेदन है कि अपने साथ ओढ़ने-बिछाने के सामान अवश्य लायें।

–महादेव विद्रोही, प्रबंधक ट्रस्टी

गतांक से आगे...

समग्र एवं मजबूत हिमालय-लोकनीति

❑ सुरेश भाई

हिमालय के सतत विकास की सही दिशा–हिमालय की लोकनीति : हिमालय दक्षिण एशिया का जल मीनार है। अतः यहां के जल, जंगल, जमीन के साथ संवेदनशील होकर व्यवहार करने की आवश्यकता है। उत्तराखंड में चिपको, नदी बचाओ, रक्षासूत्र, जन कारवां और सिविल सोसायटी, सरला बहन द्वारा पर्वतीय विकास की सही दिशा और वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हिमालय लोकनीति राज्य एवं केन्द्र के सामने प्रस्तुत की गयी है। *इसको ध्यान में रखकर हिमालय के लिए एक समग्र एवं मजबूत हिमालय-नीति बनवाने की पहल की गयी है। रिपोर्ट में कहा गया है कि भविष्य के लिए उपरोक्त रिपोर्टों, अध्ययनों व हिमालय लोकनीति के अनुसार निम्नानुसार कदम बढ़ाने की आवश्यकता है :—*

* हिमालय भारत को उत्तर दिशा की ओर से सुरक्षित रखता है। अतः इस बात को ध्यान में रखकर ही यहां विकास का कार्य करना चाहिए। इसलिए हिमालय का, मात्र व्यावसायिक दोहन के लिए विकास कार्य नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए खनिजों के लिए खनन का कार्य, बड़ी-बड़ी जल विद्युत परियोजनाएं जो यहां के पर्यावरण के साथ-साथ लोगों के जीवन को भी क्षति पहुँचाएँगी; विकास की नई योजनाएं चाहे वे वन संसाधनों के दोहन के लिए बनायी गयी हों अथवा लोगों के परंपरागत कौशल को प्रभावित करने वाली हों।
* हिमालय का दुनिया में विशेष स्थान है। अतः यहां पर पंचतारा, आकर्षक, आधुनिक महानगरीय शैली की तरह बड़ी-बड़ी सुविधाओं वाले भवनों के निर्माण करने से बचना होगा। इसके स्थान पर हमें चाहिए कि यहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के अनुसार ही छोटे अथवा मध्यम आकार का घर बनाये जाएं, जिससे कि स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव न पड़े।
* इसलिए यहां की भौगोलिक एवं पर्यावरणीय स्थिति को देखते हुए निर्माण की रूपरेखा एवं योजना के क्रियान्वयन के लिए हिमालयी मॉडल तैयार करना होगा। यह मॉडल ऐसा होना चाहिए जो एक ओर आधुनिक समुदाय की सभी मूलभूत आवश्यकताओं को सुनिश्चित करे जैसे कि भवन, सड़कें, विद्युत वितरण लाइंस। शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सेवा से जुड़े भवन आदि बनाने से पहले हमें यहां की प्रकृति की संवेदनशीलता, भौगोलिक स्थिति और हिमालय की प्राथमिक एवं अनंत भूमिकाओं को ध्यान में रखकर विकास करना होगा।
* हिमालयी राज्यों खास करके उत्तराखंड, हिमाचल, अरुणांचल, असम आदि में जल विद्युत उत्पादन हेतु प्रस्तावित परियोजनाएं तथा वर्तमान परियोजनाएं जो सुरंग पर आधारित हों उन्हें तत्काल प्रभाव से बंद कर देना चाहिए। विद्युत उत्पादन के अन्य वैकल्पिक अपरंपरागत ऊर्जा स्रोत जैसे कि सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा तथा घराट (पानी मिल) आधारित लघु जल विद्युत परियोजनाओं को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे कि हिमालयी क्षेत्रों में बसे लोगों को ऊर्जा मिले। इसके लिए प्रत्येक हिमालय राज्य को छोटी व लघु जल विद्युत परियोजना के लिए अपना ग्रिड बनाना चाहिए।
* वर्तमान में कार्यरत जल विद्युत परियोजनाओं के प्रभावों का अध्ययन करना चाहिए और नदी के पानी के 30 प्रतिशत से ज्यादा भाग को बदलना नहीं चाहिए।
* वर्तमान में कार्यरत जल विद्युत परियोजनाओं के टरबाइन में जमी हुई नदी की गाद को तत्काल निकालने की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे कि नदी के निचले क्षेत्र की उर्वरक कृषि भूमि पर इसका दुष्प्रभाव न हो।
* किसी भी परियोजना को स्वीकृत करने से पहले उसे यह अनुमति लेना आवश्यक होगा कि परियोजना प्रभावित समुदाय को विश्वास में लेकर बनायी गयी है अथवा नहीं। और परियोजना के दुष्प्रभाव के आकलन के लिए विश्वसनीय संस्थाओं के सहयोग से वैज्ञानिक अध्ययन कराया गया हो तथा इसमें स्थानीय ज्ञान एवं अनुभवों को सम्मिलित किया गया हो। परियोजना का लाभ-हानि विश्लेषण केवल आर्थिक आधार पर नहीं हो, बल्कि इसमें सामाजिक एवं पर्यावरणीय कीमत को भी शामिल करना चाहिए। कुल मिलाकर जब तक स्थानीय समुदाय परियोजना के लिए सहमति नहीं दे, तब तक सरकार उस परियोजना के लिए मंजूरी नहीं देगी। प्रायः भोले-भाले ग्रामीण लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए कंपनियों तथा भ्रष्ट सरकारी अधिकारियों की मिलीभगत से अवैध कागजात तैयार कर लिये जाते हैं। इससे बचने के कड़े नियम का प्रावधान होना चाहिए, जिससे कि आरोपियों को कठोर सजा मिल सके। यदि किसी कारणवश परियोजना संचालक एवं स्थानीय लोगों के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाए तो ऐसी स्थिति में सरकार का निर्णय सर्वप्रथम स्थानीय समुदाय के हित में होना चाहिए।
* लघु विद्युत परियोजनाएं जो किसी धारा अथवा छोटी धारा के ऊपर बनायी जा

रही हैं और लगातार जल-प्रवाह में कोई व्यवधान न उत्पन्न करती हों तथा स्थानीय सहयोग से बनायी जा रही हों—ऐसी परियोजनाओं के लिए तकनीकी सहयोग एवं आर्थिक मदद राज्य सरकार से मिले। ऐसी परियोजनाओं से उत्पादित विद्युत को गांव में स्थानीय लोगों द्वारा लघु उद्योगों के लिए सर्वप्रथम उपलब्ध कराना चाहिए जिससे कि बेरोजगारी कम हो सके तथा लोगों का पलायन भी रुक सके।

* वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत (सौर, पवन, गोबर गैस) का विकास प्राथमिकता के आधार पर करना चाहिए और इसे ऊर्जा का प्रमुख स्रोत बनाना चाहिए।
* 1960 के दशक में उत्तराखंड में लगभग 200 लघु जल विद्युत इकाइयां थीं जो बड़ी-बड़ी सुरंग आधारित जल विद्युत परियोजनाओं के आने के बाद सभी की सभी बंद हो चुकी हैं। ये सभी इकाइयां पर्यावरण एवं स्थानीय लोगों के लिए हानिकारक भी नहीं थीं। ऐसी बंद पड़ी इकाइयों को जल्द से जल्द सुधारकर इनका उपयोग ग्रामीण लघु उद्योगों के लिए किया जाना चाहिए। इस तरह की लघु जल विद्युत इकाइयां संपूर्ण हिमालयी क्षेत्र में बनवानी चाहिए जिससे यहां के लोगों की ऊर्जा से संबंधित जरूरत पूरी हो सके।
* हिमालय में विकास के कार्यों को निजी कंपनियों अथवा ठेकेदारों को नहीं देना चाहिए, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य किसी भी कीमत पर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का होता है। इसके बदले विकास के कार्यों को ग्रामीण स्तर की संस्थाएं जैसे ग्रामसभा अथवा ग्राम पंचायत अथवा क्षेत्र व जिला पंचायत द्वारा किया जाना चाहिए।
* नदियों और अन्य जल स्रोतों के प्राकृतिक एवं उन्मुक्त जल बहाव में किसी भी हालत में अवरोध उत्पन्न नहीं करना चाहिए।
* जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर पहला अधिकार स्थानीय लोगों का होना चाहिए। स्थानीय समुदाय की स्पष्ट अनुमति के बिना पानी का उपयोग अन्य कार्यों के लिए नहीं होना चाहिए। स्थानीय समुदाय को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे अपने जल स्रोतों के प्रबंधन को पूर्ण रूप से अपने हाथों में लेकर करें। उन्हें पानी के उपयोग हेतु नियम बनाने का अधिकार हो और इस नियम का पालन सभी लोगों द्वारा किया जाये।
* जल संरक्षण के लिए प्राकृतिक उपाय, जैसे चौड़ी पत्ती वाले पेड़ों का रोपण करना, विभिन्न विधियों द्वारा वर्षा जल संग्रह करना; और इस तरह के फसल उत्पादन को बढ़ावा देना चाहिए जिसमें कम से कम पानी का उपयोग होता हो। हिमालय के लिए किसी भी प्रकार की विकास की नीति में *जल संरक्षण* प्रमुख मुद्दा हो।
* चाहे कारण कुछ भी हो, किसी भी नदी के जल बहाव को नहीं रोकना चाहिए; यह अच्छा होगा कि प्रत्येक नदी की अलग नीति बने।
* किसी भी भवन के लिए जिसका कुल क्षेत्रफल 200 वर्गमीटर से ज्यादा हो, वर्षा जल संग्रहण की व्यवस्था अनिवार्य रूप से होना चाहिए।
* जंगल के लिए उपयुक्त प्रबंधन हेतु यह अति आवश्यक हो गया है कि ब्रिटिश काल से लागू वन अधिनियम को समाप्त कर दिया जाए और वन के प्रबंधन की जिम्मेदारी स्थानीय लोगों को सौंपी जाए।
* गांव एवं इनमें रहने वाले लोगों के विकास को सुनिश्चित करने के लिए, जंगल का कुछ हिस्सा, खास करके सामुदायिक वन संसाधन (सी.एफ.आर.) को ग्रामवासियों के उपयोग के लिए दे देना चाहिए। हिमालय में बसने वाले प्रत्येक गांव के लिए अपना वन विकसित करना अनिवार्य हो।
* जंगल एवं जैव विविधता के संरक्षण एवं विस्तार के लिए कठोर कदम उठाये जाने चाहिए।
* जंगल को आग से सुरक्षित रखने के लिए हमें चौड़ी पत्ती वाली विभिन्न प्रजाति के पेड़ों का वनीकरण करना होगा क्योंकि ऐसे पेड़ों वाले जंगलों में आग लगने पर आसानी से काबू की जा सकती है।
* कृषि, फलदार पेड़ लगाने का कार्य, वनीकरण आदि को हिमालय में बसने वाले लोगों की जीविका के लिए उत्तम स्रोत माना गया है। अतः किसी भी प्रकार की विकास योजना में ये सभी कार्य मूलभूत आधार के रूप में होने चाहिए।
* जड़ी-बूटी और गंध वाले पेड़-पौधों तथा फलदार पेड़ों के रोपण को बढ़ावा देना चाहिए।
* कृषि उत्पाद के गुणात्मक सुधार की कार्य-योजनाओं को बढ़ावा देना चाहिए। स्थानीय लोगों को 'वेल्यू एडिशन' की कार्य योजनाओं में सम्मिलित कर उन्हें प्रगतिशील उद्यमी बनने में सहायता करनी चाहिए।
* आपदा प्रबंधन के लिए मजबूत *आपदा प्रबंधन मैन्युअल* ग्राम स्तर से बनाया जाए।
* सरकार को आपदा से निपटने के लिए वित्तीय नीति बनानी चाहिए। इसके लिए गांव से लेकर राज्य स्तर तक प्रभावितों को समय-समय पर आर्थिक सहयोग दिलाने के लिए खासकर बैंकों की जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिए।
* आपदा-प्रभावितों को वनाधिकार अधिनियम 2006 के अनुसार खाली पड़ी वन भूमि को कृषि एवं आवासीय भवन-निर्माण के लिए उपलब्ध करवाना चाहिए। →

भूमंडलीकरण के दौर में 'आप' कितना प्रासंगिक?

❑ डॉ. कृष्णस्वरूप आनन्दी

आजकल कांग्रेस-नीति प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए), भाजपा-नीत राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (एनडीए), वाम मोर्चा, तीसरा या चौथा मोर्चा जैसी राजनीति जमातों के स्थान पर आम आदमी पार्टी ('आप') की चर्चा जोरों पर है। कुछ दूरदर्शी विश्लेषकों को 'आप' से ज्यादा आशा या संभावना दीख रही है। वे इसे भविष्य की एक बड़ी राजनीतिक ताकत के रूप में ले रहे हैं। जगह-जगह 'आप' के भावी उम्मीदवार सक्रिय हो उठे हैं। अनुमान है कि भारी संख्या में इस पार्टी के टिकटार्थी होंगे। 'आप' के भविष्य में बढ़ने वाले ग्राफ को लेकर तमाम लोग आश्वस्त हैं।

परिवर्तन की राजनीति में केन्द्रीय स्थान विचारधारा का है। विचारधारा का वहन करने वाले संगठन या आंदोलन को खड़ा करने की बात उसके बाद आती है। विचार और संगठन या आंदोलन के सुमेल से नया नेतृत्व उभरता है। सत्ता और दल की मौजूदा राजनीति में यह क्रम उलट गया है। आज राजनीति में प्रवेश करने के इच्छुक चतुर सुजान पहले उस नेता की तलाश करते हैं जो उन्हें सत्ता में भागीदार बना सकता है यानी उन्हें मलाईदार पदों पर आसीन कर सकता है। वे उस नेता के पिछलग्गू बनकर चाटुकारिता के सारे हदें पार कर जाते हें। दिखावे के तौर पर उनकी पहली और आखिरी निष्ठा नेता के प्रति होती है। नेता पहले, संगठन या आंदोलन बाद में और विचारधारा—पहली बात तो यह कहीं होती नहीं, अगर होती भी है तो उसका स्थान सबसे अंत में आता है और शायद ही कोई विरला वहां तक पहुंचने की जहमत उठाता है। डॉ. लोहिया कहा करते थे कि आज की चालू राजनीति में 'बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि' वाली बात लागू हो रही है। कहने का मतलब यह है कि पहले 'बुद्ध' यानी नेता, फिर 'संघ' यानी संगठन और सबसे अंत में 'धम्म' (विचार-दर्शन) का क्रम बना हुआ है। सच कहा जाय तो बदलाव की वैकल्पिक राजनीति में सही क्रम इस प्रकार होना चाहिए 'धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि' यानी पहले विचार, फिर संगठन या आंदोलन और अंत में नेता।

'एन जी ओ' नामधारी सिविल सोसाइटी समूहों से जुड़े तथाकथित सच्चे या ईमानदार जीव, राजनीतिक दलों या गिरोहों में हाशिये पर धकेल दिये गये नेता या कार्यकर्ता, सामाजिक

→महिला केन्द्रित विकास

1. महिलाओं को अपने परंपरागत एवं स्वतंत्र रोजगार के अवसर का अधिकार मिलना चाहिए।
2. महिलाओं के लिए शिक्षा एवं स्वास्थ्य से संबंधित मुद्दों पर काम करने वाले महिला संस्थान और अन्य संगठनों को स्थानीय महिलाओं के अनुभवों को भी ध्यान में रखकर योजनाएं बनानी चाहिए।

* समुदाय आधारित पर्यटन को बढ़ावा देना चाहिए। दुर्गम पर्यटन स्थलों को सड़क मार्ग की अपेक्षा रज्जु मार्ग (रोप-वे) द्वारा जोड़ना चाहिए। ग्रीन टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल कर सड़क का निर्माण करना चाहिए। हिमालय जैसे अति संवेदनशील क्षेत्रों में निर्माण-कार्य में डायनामाइट का उपयोग नहीं करना चाहिए, और मलबे को घाटी के ढाल पर जमा नहीं करना चाहिए। ठोस अवशिष्ट एवं मलबे का उपयुक्त विधि द्वारा प्रबंधन करना चाहिए। बड़े स्तर पर निर्माण-कार्ययोजना में अवशिष्ट प्रबंधन एवं वृक्षारोपण का कार्य करना अनिवार्य रूप से सम्मिलित होना चाहिए।
* आधुनिक संचार एवं सूचना तकनीकी का विकास अधिकतम स्तर तक यहां करना चाहिए।
* जब हम कहते हैं कि कृषि का विकास, फल उत्पादन, वनीकरण आदि जीविको-पार्जन के महत्त्वपूर्ण साधन हैं, तब इसका मतलब यह है कि सबके लिए उर्वरक जमीन हो, जमीन की उर्वरकता किसान के हाथों में हो।
* फल उत्पादन एवं वनीकरण के लिए अपेक्षाकृत कम उपजाऊ जमीन से भी अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। अतः जमीन की उर्वराशक्ति की स्थिति की जांच कराना आवश्यक है। अच्छी जमीन पर खेती कार्य किया जाए परंतु किसी भी हालत में 30 डिग्री से अधिक ढाल वाली जमीन पर खेती न की जाए।
* भू-गर्भ विज्ञान की भाषा में कहा जाता है कि हिमालय हिन्दुस्तान और एशिया प्लेट के संधिस्थान पर स्थित है जो आपस में टकराकर कई छोटे-छोटे प्लेटों में टूट गया है और ये सभी प्लेटें एक-दूसरे के ऊपर निरंतर गतिमान हैं। हमें इन भूगर्भीय हलचलों के अध्ययन के आधार पर ही इस क्षेत्र के भू-उपयोग के बारे में समझना होगा। बड़े-बड़े जलाशयों एवं बहुमंजिला भवनों का निर्माण-कार्य इस क्षेत्र के लिए आपदाओं को निमंत्रण देने जैसा होगा। हिमालय की एक निश्चित ऊंचाई के बाद के क्षेत्रों को अति संवेदनशील क्षेत्र घोषित करना होगा। इन क्षेत्रों में किसी भी प्रकार की मानवीय गतिविधियां, चाहे वह पर्यटन ही क्यों न हो, पूर्णतः प्रतिबंधित करनी होंगी। ❑

सरोकार रखने वाले मुखर बुद्धिजीवी, मौजूदा व्यवस्था से हताश-निराश सज्जन और समाजकर्म से हारे-थके या चुके लोग—उन सबके लिए अरविन्द केजरीवाल आशा की एक किरण बनकर उभरे हैं। राजनीतिक रंगमंच पर वर्तमान में ऐसा हर शख्स इस बीजमंत्र को हृदय में धारण कर स्वाँग करता नजर आ रहा है—'बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि'।

यह प्रश्न विचारणीय है कि कोई राजनीतिक दल आगे चलकर विकल्प बन सकता है, इसके लिए बुनियादी शर्तें क्या-क्या होनी चाहिए? मान लिया जाय कि एक दल विशेष के सारे पदाधिकारी एवं सक्रिय सदस्यगण बेहद ईमानदार, सच्चे, साफ-सुथरे, पारदर्शी एवं सच्चरित्र हैं; विधायिका में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेते हैं तथा इस प्रकार एक लोकप्रिय सरकार का गठन करने में कामयाब हो जाते हैं। इतना ही नहीं, वे सरकार को बेहतरीन ढंग से चलाते भी हैं। कहने का मतलब यह है कि वे सुशासन (गुड गवर्नेंस) का एक सुन्दर नमूना पेश करते हैं। सुशासन नितांत आवश्यक है लेकिन पर्याप्त बिल्कुल नहीं। बुनियादी काम है राज व्यवस्था, अर्थनीति, कार्यशैली या जीवन दृष्टि में आमूलचूल बदलाव; सड़ी-गली व्यवस्था के स्थान पर ऐसे नये ढांचे का अधिष्ठान करना जिसमें जन-जन को ईमान की रोटी और इज्जत की जिन्दगी मयस्सर हो। दलीय लोकतंत्र में अगर कोई सरकार अपनी पूर्ववर्ती सरकार के कुशासन, भ्रष्टाचार या अधिनायकवाद से निजात दिला देती है, लेकिन व्यवस्था जस-की-तस चलती रहती है तो क्या यह माना जा सकता है कि सचमुच उसने विकल्प प्रस्तुत किया है! फौरी तौर पर भले ही लोगों को राहत मिली हो, लेकिन आगे चलकर ऐसा विकल्प अपने उस पूर्ववर्ती शासन का 'डुप्लीकेट' या भ्रष्ट संस्करण बन जाता है जिसे अपदस्थ करके कभी वह सत्तारूढ़ हुआ था। एक सटीक मुहावरा चल पड़ा है—सब नागनाथ के भाई साँपनाथ जैसे हैं।

आज देश कॉरपोरेट-नीति बहुराष्ट्रीय उपनिवेशवाद के चंगुल में फँस गया है। विकसित देशों की बिरादरी, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं, बहुपक्षीय या द्विपक्षीय मुक्त व्यापार एवं निवेश संधियां तथा परोपकार का कारोबार करने वाली वैश्विक दानदाता एजेंसियां इस नये उपनिवेशवाद का रास्ता साफ कर रही है। ब्रितानी साम्राज्य द्वारा प्रवर्तित पुराने उपनिवेशवाद की तुलना में यह नया उपनिवेशवाद ज्यादा खतरनाक, मारक और सूक्ष्म है। उसने विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग), वित्त, व्यापार, बाजार, कृषि, खुदरा कारोबार, बुनियादी ढांचा (इन्फ्रास्ट्रक्चर), सेवा क्षेत्र, मीडिया, शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अपनी प्रभावी उपस्थिति और दखल बढ़ा ली है। अब वैश्विक कॉरपोरेट समूह की नजरें देश के जल-जंगल-जमीन, खनिज या धात्विक पदार्थ जैसे अनमोल प्राकृतिक संसाधनों पर हैं। वे अपनी नकदी या प्रतीयमान पूंजी (Virtual capital) को असली पूंजी (Real capital) में बदलना चाह रहे हैं। बड़े-बड़े संयंत्र, औद्योगिक संकुल, हाई-टेक टाउनशिप और बुनियादी ढांचागत प्रकल्प स्थानीय या मूल निवासियों को उनके प्राथमिक समुदायों तथा रोजगार के परंपरागत या बुनियादी साधनों से विस्थापित कर रहे हैं। विकास के इस मॉडल में पर्यावरण एवं लोकजीवन पर गाज गिर रही है, नैसर्गिक संसाधनों की लूट हो रही है और स्थानीय जनगण अपना सर्वस्व खोते जा रहे हैं।

जनगण-नीत स्वराज की स्थापना में सबसे बड़ा बाधक है—कॉरपोरेट-नीत भूमंडलीकरण। उसे चुनौती दिये बगैर स्वराज की स्थापना की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। 'मुझे स्वराज चाहिए' की टोपियां पहनने वाले साथियों ने 'आम आदमी पार्टी' बनायी है, लेकिन उनके एजेंडे में स्वराज की स्थापना की राह में सबसे बड़ा रोड़ा बन चुके भूमंडलीकरण के खिलाफ संघर्ष करने का कोई 'ब्लूप्रिंट' या खाका नहीं दिखायी पड़ता। सारा जोर लोगों की भागीदारी और निगरानी पर आधारित चुस्त-दुरुस्त शासन-प्रशासन देने पर है। ठेठ शब्दों में कहा जाय, तो अर्थव्यवस्था के कॉरपोरेटीकरण की नीतियां बेरोकटोक चलती रहेंगी; हां! उसको अंजाम देने के लिए विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व व्यापार संगठन की तिकड़ी द्वारा तैयार ढांचागत समायोजन कार्यक्रमों (Structural Adjustment Programmes) को कारगर ढंग से ईमानदारी, तेजी और पारदर्शिता के साथ लागू किया जाना जारी रहेगा। आज की राजनीति और सत्ता भूमंडलीकरण की चेरी हैं।

कॉरपोरेट-नीत भूमंडलीकरण के दौर में सोवियत संघ का विघटन हो गया, बर्लिन की दीवार टूट गयी और दुनिया एकध्रुवीय बन गयी। समाजशास्त्री फ्रांसिस फुकूयामा तो यहां तक कह बैठे कि 'इतिहास का अंत हो गया। सारी दुनिया में यह धारणा मजबूत होती गयी कि बहुदलीय प्रणाली पर आधारित लोकतंत्र और पूंजीवादी विकास का कॉरपोरेट-संचालित मॉडल ही अब एकमात्र विकल्प है। वैश्विक कॉरपोरेट समूहों के 'थिंक टैंक' बराबर यह कह रहे हैं कि भूमंडलीकरण अपलटनीय है (Globalisation is irreversible)। अमरीका के आँगन में स्थित लातिनी अमरीका के कई देशों ने इस मिथक को गलत साबित कर दिया है। 'आप' जैसे राजनीतिक दल से भूमंडलीकरण के खिलाफ यह अपेक्षा करना बेमानी है। देश भर में जगह-जगह चल रहे जन आंदोलनों की कोख से एक राजनीतिक ताकत जरूर पैदा हो सकती है, जो भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को पलट दे। ❑

गांधी शांति प्रतिष्ठान व्याख्यान-2013

गांधी के बाद अहिंसक प्रतिकार

❑ प्रो. कृष्णनाथ

''हंटर कमेटी के सामने गवाही''

(लार्ड हंटर द्वारा जिरह)

''प्रश्न : मिस्टर गांधी, मैं समझता हूं कि आप सत्याग्रह आन्दोलन के प्रवर्तक हैं।

''उत्तर : जी हां, श्रीमान।

''प्रश्न : क्या आप इसे संक्षेप में बताएंगे?

''उत्तर : यह आन्दोलन पूर्णतया सत्य पर आधारित है। जैसी कि मैंने इसकी कल्पना की है,यह घरेलू व्यवहार का राजनीतिक क्षेत्र में विस्तार है, और इसके जरिये ही तकलीफों को दूर करने के लिए हिंसा का इस्तेमाल सारे देश में फैलने से रोका जा सकता है।

''प्रश्न : इसका इस्तेमाल आपने रोलेट एक्ट के विरोध के सिलसिले में किया। और उस सिलसिले में आपने जनता से सत्याग्रह की शपथ पर दस्तखत करने को कहा?

''उत्तर : जी हां, श्रीमान।

''प्रश्न : क्या आपका इरादा जितने अधिक से अधिक लोग मिल सकें, उन्हें इस आन्दोलन में भर्ती करने का था?

''उत्तर : हां, सत्य और अहिंसा के सिद्धांत के मुताबिक। अगर उन सिद्धांतों पर लाखों लोग अमल करने के लिए तैयार होते तो मैं उन सबको भर्ती करता।

''प्रश्न : क्या यह आन्दोलन निश्चय ही सरकार विरोधी नहीं है; क्योंकि आप सरकार की मर्जी के बदले सत्याग्रह कमेटी का संकल्प खड़ा करते हैं?

''उत्तर : जनता ने इस भावना से इस आन्दोलन को नहीं समझा है।

''प्रश्न : मैं आपसे कहूंगा कि आप इसे सरकार की दृष्टि से देखें। अगर आप खुद गवर्नर होते तो आप उस आन्दोलन को क्या कहते जो उन कानूनों को तोड़ता, जिन्हें आपकी कमेटी ने लागू किया है?

''उत्तर : इसमें सत्याग्रह सिद्धांत पूरी तौर पर नहीं कहा गया है। अगर मैं सरकार चलाता होता और मेरे सामने ऐसे व्यक्तियों का समूह होता जो पूरी तौर पर सत्य की खोज के लिए,बिना हिंसा किये, अन्यायी कानूनों से छुटकारा पाने के लिए दृढ़ होते, तो मैं उनका स्वागत करता। मैं समझता कि वे सब में अच्छे विधानवादी हैं। अगर मैं गवर्नर होता तो ऐसे लोगों को अपने सलाहकार के तौर पर रखता; जो मुझे बराबर सही रास्ते पर चलाते।

''प्रश्न : कोई खास कानून न्यायपूर्ण है या अन्यायपूर्ण, इसके बारे में लोगों की राय तो भिन्न-भिन्न हो सकती है?

''उत्तर : मुख्य रूप से यही कारण है कि हिंसा को तज दिया गया है। और सत्याग्रही अपने विरोधी की स्वतंत्रता को उतना ही हक देता है जितना कि वह इसे खुद अपने लिए सुरक्षित रखता है, और वह खुद अपने शरीर पर चोट सहकर लड़ता है।'' *यंग इंडिया, 21-2-20 संकलित, पृष्ठ 19-20 (अनूदित)*

''जनता और सत्याग्रह''

''प्रश्न : आप कैसे सोचते हैं कि जनता अहिंसा पर अमल कर सकती है? जब कि हम जानते हैं कि उसमें क्रोध,घृणा और द्वेष है और तुच्छ बातों पर लड़ती है।

''उत्तर : ऐसा है, फिर भी मैं सोचता हूं कि वे सबकी भलाई के लिए अहिंसा पर अमल कर सकते हैं। क्या आप सोचते हैं कि हजारों औरतों ने निषिद्ध नमक किसी के प्रति द्वेष के कारण इकट्ठा किया? उन्हें मालूम था कि कांग्रेस या गांधी ने उन्हें कुछ खास काम करने को कहा है और उन्होंने आशा व विश्वास के साथ सब कुछ किया। मेरी राय में अहिंसा का सबसे पूर्ण प्रदर्शन चम्पारन में हुआ। क्या हजारों रैयत ने जिन्होंने नील की खेती की बुराइयों के विरोध में विद्रोह किया था सरकार या निलहे गोरों के प्रति द्वेष से वैसा किया?

''प्रश्न : तब क्या सारी दुनिया की जनता ऐसी ही नहीं है।

''उत्तर : नहीं, क्यों कि दूसरों के पीछे अहिंसा की यह पृष्ठभूमि नहीं है। यही मैं समझता हूं कि कमजोरों की अहिंसा शूरवीरों की अहिंसा बने। यह एक सपना हो सकता है। मुझे इसे सच बनाने की चेष्टा करनी है।'' *हरिजन, 4-11-39, संकलित, सत्याग्रह, पृष्ठ 195 (अनूदित)*

''अहिंसा एक ऐसी शक्ति है, जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब ले सकते हैं। जब हम अहिंसा को अपना जीवन सिद्धांत बना लें, तब वह हमारे संपूर्ण जीवन में व्याप्त होना चाहिए। यों कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़ने से लाभ नहीं हो सकता।

''यह समझना जबर्दस्त भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए लाभदायक है, जन-समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिए धर्म है, उतना ही वह राष्ट्र के लिए भी धर्म है।'' *हरिजन, 5-9-1936, संकलित, सत्याग्रह, पृष्ठ 206 (अनूदित)*

''सत्याग्रही की शारीरिक तालीम''

''जिन चीजों की सत्याग्रहियों को आवश्यकता है, वे...सोचें। यदि सत्याग्रही पूर्ण निरोगी नहीं होता जो शायद पूर्ण रूप से वह निडर नहीं बनेगा। उसमें दिन-रात एक ही पैर पर खड़े रहने की शक्ति होनी होगी। ठंड-धूप, बारिश सहन करते हुए भी वह बीमार नहीं होगा। जहां भय हो ,जहां आग लगी हो, वहां दौड़ कर जाने की शक्ति उसमें होनी चाहिए, निर्जन जंगल में, श्मशान में, निडरपन से अकेले घूमने की शक्ति होनी चाहिए। चाहे कितनी मार पड़े,घायल हो जाए, भूखों मरे, तब भी वह चूं-चां नहीं करेगा, न घबराएगा और न अपना स्थान छोड़ेगा। दंगे में मौका मिले ऐसा होने पर भी उसमें कूद पड़ने की युक्ति और शक्ति सत्याग्रही में होनी चाहिए। कहीं आग लगी हो, और ऊपर की मंजिल में रहते हुए लोगों को बचाना है, तो

ईश्वर का स्मरण करते-करते वहां पहुंच जाने की इच्छा और शक्ति उसमें होनी चाहिए। नदी में कहीं बाढ़ आई हो और कोई डूबता हो, कोई कुएं में गिरा हो उसको बचाने की खातिर कूद पड़ने की शक्ति सत्याग्रही में होनी चाहिए।''

''इस फेहरिस्त को जितना विस्तृत करना चाहें, उतनी कर सकते हैं। सारांश मात्र इतना ही है कि जहां दुःख हो, वहां मदद करने दौड़ जाने की, और चाहे हमें कितना ही दुःख कोई दे तब भी हँसते मुँह बर्दाश्त करने की शक्ति होनी चाहिए। जो मैंने लिखा है, उसे जो हजम कर सके हैं, वही आसानी से तालीम के नियम बना सकेंगे,ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

''जिस तरह ईश्वर में श्रद्धा की आवश्यकता है, वैसे ही ब्रह्मचर्य की भी है। बिना ब्रह्मचर्य न तो उसमें तेज होगा, न आत्मिक बल होगा और न निःशस्त्र होते हुए भी दुनिया के सामने खड़े होने की शक्ति होगी। यहां ब्रह्मचर्य की जो व्यापक व्याख्या की है, वह भले न मानी जाए, ब्रह्मचर्य के माने सिर्फ वीर्यरक्षा भले ही मानी जाए। कम खुराक से और बिना बाहर की मदद से जिसे जीवन-निर्वाह करना हो, उसे अगर हर हालत में वीर्य खर्च करना है, तो वह आखिर में निर्वीर्य बनेगा। उसमें जो बल होना चाहिए वह नहीं आएगा।...ऐसे लोग कभी सत्याग्रही नहीं बन सकेंगे; वैसे ही जिनको धन की लालसा है, वे भी नहीं बन सकेंगे।

''यह तो मैंने सत्याग्रह की शारीरिक तालीम की बुनियादी बातें लिखी है, उसके मुताबिक कोई व्यायाम-रचना हो सकेगी। अब तो इतना स्पष्ट होना चाहिए कि सत्याग्रही तालीम में तलवार ,भाले,तमंचे का स्थान नहीं है। उसे देखने की या छूने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे भी भयंकर शस्त्र आज मौजूद हैं, रोज नए-नए निकलते जाते हैं। चाहे कैसे भी भय—काल्पनिक या अनुभव में आए हुए—हों, उनके पी जाने की शक्ति जिसको बढ़ानी है, वह तलवार का अनुभव लेकर किस भय से मुक्त होगा?

''ऐसा करते कोई भयमुक्त हुआ सुना नहीं है। महावीर आदि अहिंसा सीखे,वह उनको शस्त्र का अनुभव ज्ञान था उस कारण नहीं। लेकिन उसके होते हुए भी वह भयमुक्त हुए और उन्होंने अहिंसा सीखी। जरा सोचने पर पता चलेगा कि जिसने हमेशा तलवार का आश्रय लिया है, उसको तलवार छोड़ना कठिन जँचेगा। हां, लेकिन जो शस्त्रधारी शस्त्र फेंक देगा उसकी अहिंसा का सच्ची और स्थायी बनना संभव है सही, लेकिन उसका अर्थ यह कभी न किया जाए कि सच्चे अहिंसक बनने के लिए पहले शस्त्र धारण करना ही चाहिए। ऐसा अर्थ दूसरे क्षेत्र में करें तो अर्थ निकलता है कि डाकू ही साहूकार बन सकता है; रोगी ही निरोगी बन सकता है, विषयी ही ब्रह्मचारी बन सकता है! सच बात यह है कि हमें प्रस्तुत वायुमंडल से बाहर निकल कर तटस्थता से सोचने की आदत ही नहीं है, और छिछला विचार करने की आदत होने के कारण हम कुछ परिणाम पा नहीं सकते हैं और भ्रमजाल में फँसे रहते है।'' *हरिजन,12-10-40, गांधीजी की ग्रंथमाला, पृष्ठ 362-64*

''सिविल नाफरमानी का हक''

''काश मैं सबको इस बात के लिए मना सकता कि सिविल नाफरमानी हर नागरिक का जन्मजात अधिकार है। वह मनुष्यता छोड़े बिना इसको छोड़ नहीं सकता। सिविल नाफरमानी से कभी अराजकता नहीं पैदा होती। मुजरिम नाफरमानी को शक्ति से कुचलता है। जब ऐसा नहीं करता तो राज नष्ट हो जाता है। लेकिन सिविल नाफरमानी को कुचलना आत्मा को कैद करना है। सिविल नाफरमानी से तो केवल ताकत और पवित्रता उपजती है। सिविल नाफरमानी करने वाला शस्त्र का इस्तेमाल नहीं करता, इसलिए वह उस राज के लिए हरगिज नुकसानदेह नहीं है,जो जनता की आवाज को सुनने को तैयार है। वह निरंकुश राज्य के लिए अवश्य ही खतरनाक है, क्योंकि वह जनता की शक्ति को, जिस बुराई का वह प्रतिकार करता है, उसके खिलाफ लगाकर वह राज को ढहा देता है। ऐसे राज में जो कानूनहीन हो गया है,या भ्रष्ट हो गया है, सिविल नाफरमानी एक पवित्र कर्तव्य हो जाती है। और वह नागरिक जो ऐसे राज के साथ हेल-मेल रखता है, वह भ्रष्टाचार और कानून-हीनता का सहभागी होता है।

''इसलिए संभव है कि किसी खास काम या कानून के खिलाफ सिविल नाफरमानी करने का विवेक विवादास्पद हो। सावधानी बरतने की या थोड़ा थमने की सलाह भी दी जा सकती है। लेकिन सिविल नाफरमानी के अधिकार को अपने आप में चुनौती नहीं दी जा सकती। यह तो एक जन्मसिद्ध अधिकार है,जिसका विसर्जन आत्म-सम्मान को विसर्जन किए बिना नहीं किया जा सकता।

''सिविल नाफरमानी के हक का आग्रह करते समय इसके अमल को हर संभव पाबंदी से मर्यादित रखना चाहिए। हिंसा या आम कानूनहीनता फैलने न देने की हर सम्भव तैयारी करनी चाहिए। इसकी हद और व्यापकता भी जितनी जरूरी हो, उतनी ही रखनी चाहिए।'' *यंग इंडिया, 5-1-52, सत्याग्रह, पृष्ठ-174 (अनूदित)*

''सिविल नाफरमानी-एक कर्तव्य''

''अधिकतर लोग सरकारी मशीनरी की पेचीदगी को नहीं समझते। वे महसूस नहीं करते कि प्रत्येक नागरिक खामोशी से ही, लेकिन शर्तिया तौर पर, सरकार को ऐसे तरीकों से पोसता है जिनका उसे कोई इल्म तक नहीं होता। इस तरह हर नागरिक सरकार के हर काम के लिए जिम्मेदार होता है। और सरकार को तब तक सहारा देना बिल्कुल उचित है जब तक कि उसके कारनामे बर्दाश्त करने के काबिल है। लेकिन जब वे उसे या उसके राष्ट्र को चोट पहुंचाते हैं तो सरकार से सहयोग वापस ले लेना नागरिक का कर्तव्य हो जाता है।'' *यंग इंडिया, 28-7-20, सत्याग्रह, पृष्ठ-191*

''अन्तिम अस्त्र''

''चूंकि सत्याग्रह प्रत्यक्ष कार्रवाई का एक बहुत शक्तिशाली तरीका है, सत्याग्रही सभी

तरीकों से काम लेने की हर कोशिश के असफल होने पर सत्याग्रह का प्रयोग करता है। वह इसलिए लगातार और बारम्बार अधिकारियों से आग्रह करेगा, जनता से अपील करेगा, जनमत जाग्रत करेगा, और जो कोई भी उसकी बातें सुनना चाहेगा, उसे शांतिपूर्वक और ठंडे दिल से अपनी बताएगा; और जब यह सब तरीके नाकाम हो चुकेंगे तभी सत्याग्रह की शरण लेगा। लेकिन जब वह अपने अन्तःकरण की आवाज सुन लेगा और सत्याग्रह शुरू कर देगा तो फिर वह लौटेगा नहीं। *यंग इंडिया, 20-10-27, सत्याग्रह, पृष्ठ-197 (अनूदित)*

''आह्वान''

''अगर तरक्की करनी है तो हमें इतिहास को दुहराना नहीं चाहिए। हमें इतिहास बनाना चाहिए। हमें अपने पूर्वजों द्वारा सौंपी विरासत को आगे बढ़ाना चाहिए। अगर हम भौतिक जगत में नई-नई खोज और ईजाद कर सकते हैं तो आध्यात्मिक क्षेत्र में ही हम दिवालियापन क्यों जाहिर करें? क्या यह संभव नहीं है कि हम अपवादों को इतनी बार दुहराएं कि वे ही नियम बन जाएं? क्या यह नितान्त आवश्यक है कि आदमी पहले वहशी रहे और फिर आदमी बने?'' *यंग इंडिया, 6-5-26, सत्याग्रह, पृष्ठ-182 (अनूदित)*

यह कह सुन चुकने के बाद मेरा कड़वा अनुभव है कि यह आपके पास दस्तावेज के तौर पर पड़ा न रह जाए, इसलिए मैं आपकी स्मृति के लिए,सुख स्मरण के लिए इसके कुछ शीर्षक दुहरा देने की इजाजत चाहूंगा। इसमें पहले तो 'सत्याग्रह की उत्पत्ति' है; कैसे दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के दिनों में यह शब्द ही आया। और फिर 'सत्याग्रह, पैसिव रेसिस्टेंस, सिविल नाफरमानी, असहयोग' की परिभाषा दी गई हैं। इस शास्त्र के कर्ता, प्रयोग के कर्ता गांधी जी के शब्दों में सत्याग्रह क्या है, पैसिव रेसिस्टेंस क्या है, सिविल नाफरमानी क्या है, असहयोग क्या है, की जो पारिभाषिक व्याख्या है वह इसका मूल है। और जिन अहिंसात्मक प्रतिकारों की 'ग्लोबलाइजेशन ऑफ द गांधीयन वे' और अन्य संकलनों में सत्याग्रह की शताब्दी के अवसर पर व्याख्या हुई है, यह सब उस मूल के फुटनोट जैसे हैं। और जो प्रकार गांधी जी के बाद उभर कर आए, उन सबका मूल आप सत्याग्रह, सिविल नाफरमानी और असहयोग की इस व्याख्या में देख सकते हैं। यह सब इसकी शाखा-प्रशाखा है। मैं यह कह कर इन प्रयत्नों का मूल्य कोई कम नहीं करना चाहता। ये जीते जागते प्रयोग हैं, जीवंत प्रयोग हैं और इनसे निकले जो वचन हैं और साहित्य है, यानी वचन साहित्य, उसका अपना महत्त्व है। पूरे परिप्रेक्ष्य में यह सब उस सत्याग्रह की व्याख्या में शामिल है, शरीक है। इसमें सत्य के लिए अहिंसक प्रतिकार के रूप-रूपाकार शामिल हैं। **...शेष अगले अंक में**

गांधीजी की सलाह मानी गयी होती तो...

आज हालत ऐसी है कि एक नैतिक आवाज उठे और देश उसका अनुसरण करे, ऐसी कोई संस्था अथवा व्यक्ति देश में दीखता नहीं। भिन्न-भिन्न दलों के नेता जनता के सम्मुख जाकर एक-दूसरे की बातों का खण्डन करते हैं। निष्क्रिय जनता में इससे किसी प्रकार की क्रियाशीलता पैदा नहीं होती। नैतिक नेतृत्व का पूरी तरह अभाव है। इसके कारण देश में एक प्रकार की निष्क्रियता, शून्यता और खालीपन आ गया है और जनता बावली बन गयी है। कहां जाना, क्या करना, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा है। गांधीजी की सलाह मानी गयी होती तो ये दिन न आते। उनको राजनीति ही चलानी होती, तो वे मरने के पूर्व देश को आदेश क्यों देते कि कांग्रेस का स्वराज्य प्राप्ति का काम पूरा हो गया, अब उसे आम जनता की सेवा में लग जाना चाहिए और 'लोकसेवक-मंच' बनना चाहिए? कांग्रेस के लिए यह उनका वसीयतनामा था। उनकी मृत्यु के एक दिन पहले यह लिखा गया था। इसका अर्थ यही था कि यदि आप लोकसेवक बनेंगे, तो सत्ताधारियों पर आपका प्रभाव रहेगा। सत्ता का स्थान दूसरे नंबर पर रहेगा, पहले नंबर पर नहीं। प्रथम लोकसेवक होगा, सेवा रानी होगी और सत्ता उसकी दासी बनेगी।

गांधीजी के जाने के बाद राजनीति को अपनी जीवन-निष्ठा से प्रभावित करने के बदले हम स्वयं ही राजनीति से प्रभावित हो गये, चौंधिया गये। राजनीति के प्रवाह की तेजी हमें भी उसमें बहा ले गयी।आज हमारी जीवन-निष्ठा का कोई प्रभाव राजनीति पर नहीं रह गया; उलटे हमारे जीवन पर राजनीति का प्रभाव स्पष्ट है। गांधीवादी कहलाने वाले राजनीतिक लोग आज गांधी के मार्ग पर नहीं हैं।

मैं कहना चाहता हूं कि गांधीजी आये और गये, तो भी परिस्थिति जैसी है, आज राजनीति की ताकत ही क्या है?—क्षयकारिणी शक्ति। जिस पुण्य का संचय हुआ था, वह क्षीण हो रहा है। स्वराज्य के मिलने के बाद जिन्होंने सत्ता चलायी, उनमें से कितने ऐसे हैं, जिन्होंने महाराजा जनक की तरह सत्ता को पचाया है। बाकी लोगों का पुण्य तो क्षीण ही हो रहा है।

इसलिए जब कोई मुझसे पूछता है कि आप इस राजनीति को निर्मल करने की कोशिश क्यों नहीं करते, तो मैं कहता हूं कि मैं उसे खतम ही करना चाहता हूं। विज्ञान के इस युग में अब पॉलिटिक्स (राजनीति) आउट डेटेड—जीर्णशीर्ण हो गया है।

–विनोबा

बाली बैठक : निजीकरण की मुहिम

❑ सचिन कुमार जैन

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार समझौतों में हार-जीत जैसे शब्दों का प्रयोग कितना उचित है या अनुचित, लेकिन जिस तरह से डब्ल्यू.टी.ओ. की बाली बैठक में अमेरिका व यूरोपीय यूनियन के नेतृत्व में साम-दाम-दंड-भेद का खेल दुनियाभर की सरकारों ने खेला, उसमें तो हार-जीत का पुट साफ नजर आता है। प्रथम दृष्टया तो भारत सरकार की जीत नजर आती है। परंतु वास्तविकता तो यह है कि भारत के किसान और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के हकदार हार गये। यह सवाल भी खड़ा हो गया है कि कुछ देशों का समूह (जी-33) एक साथ अपनी मांगें लेकर बाली गया था, लेकिन आखिर में केवल भारत और अमेरिका आमने-सामने बैठकर समझौता करने लगे। बैठक के दौरान जो हुआ, उसे इस देश के हर व्यक्ति को अभी ही जान लेना आवश्यक है।

अब से पांचवें साल में इसका असर दिखने लगेगा तब सरकार खाद्य सुरक्षा पर अपने खर्चे को कम करने के लिए बाध्य होगी। डब्ल्यू.टी.ओ. की मंत्रीस्तरीय बैठक से पहले भारत ने तय किया था कि वह खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर कोई समझौता नहीं करेगी। लेकिन सरकार ने बाली में भारत के हितों की सुरक्षा पूर्ण नहीं की? यह माना जा रहा था कि जब तक कृषि-खाद्य सुरक्षा पर सब्सिडी का बिन्दु हल न हो जाये, तब तक कोई देश दूसरे देश के खिलाफ यह शिकायत नहीं कर सकेगा। वहीं जिस बिन्दु पर समझौता हुआ, उसके मुताबिक कृषि समझौते (एग्रीमेंट ऑन एग्रीकल्चर) के प्रावधानों के तहत ही यह सुविधा होगी, कृषि सब्सिडी और अन्य सहायता (एग्रीमेंट ऑन सब्सिडी एण्ड काउंटरवेलिंग मेझर) के संदर्भ में अब भी शिकायत और कार्यवाही किये जाने की संभावना खुली रखी गयी है। इतना ही नहीं भारत यह चाहता था कि कोई भी कार्यवाही तब तक न हो, जब तक कोई स्थायी हल न निकल आये, जबकि इस मामले में अमेरिका चार साल की समय-सीमा पर अड़ा रहा।

यह सहमति बन गयी कि सदस्य देश खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए रियायत के मौजूदा स्तर के अनुरूप ही काम करेंगे। इसका अर्थ यह भी है कि सरकारें अब खाद्य सुरक्षा पर सार्वजनिक व्यय नहीं बढ़ा सकेंगी। इसके भारत समेत अन्य विकासशील देशों पर गहरे नकारात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं। भारत सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य नीति में अब नयी फसलें भी शामिल नहीं कर सकेगी। इतना ही नहीं आज की सबसे बड़ी जरूरत न्यूनतम समर्थन मूल्य को भी बढ़ाया नहीं जा सकेगा। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के तहत पोषण की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए लोगों को खाने का तेल और दाल दिये जाने की मांग होती रही है। अब सरकार इन्हें कानून का हिस्सा नहीं बना पायेगी। इतना ही नहीं खाद्य सुरक्षा कानून की बहस के दौरान यह तय हुआ था कि एक व्यक्ति के लिए 5 किलो अनाज का मौजूदा प्रावधान भूखमरी दूर करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसे बढ़ाया जाना चाहिए।

सरकार ने तब कहा था कि देश में उत्पादन बढ़ने पर पात्रता को 5 किलो से बढ़ाया जायेगा, पर बाली में भारत सरकार के झुक जाने के बाद यह संभव नहीं होगा। और तो और राज्य सरकारें भी अब सस्ते राशन के कार्यक्रम का विस्तार नहीं कर पाएंगी। हमें यह कहकर फंसा दिया गया है कि यह सुनिश्चित करना होगा कि सरकार का भण्डारण दूसरे देशों की खाद्य सुरक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित नहीं करेगा। यानी अमेरिका यह शिकायत कर सकता है कि भारत का सस्ता राशन कार्यक्रम बांग्लादेश या नेपाल के लिए नुकसानदायक है। आशंका है कि इस प्रावधान से हमारे न्यूनतम समर्थन मूल्य की व्यवस्था टूटना शुरू हो जायेगी।

हम जानते हैं कि सरकार के भीतर ही एक वर्ग खाद्य रियायत का विरोध करता है, अब उन्हें बाली समझौता का बहाना भी मिल जायेगा। विकसित देशों के मीडिया से लेकर अमेरिका और यूरोप के प्रभावशाली औद्योगिक संगठनों ने यह प्रचार शुरू कर दिया था कि भारत फायदेमंद व्यापार नहीं होने देना चाहता। अमेरिका ने धमकी दी कि यदि खाद्य सब्सिडी पर भारत नहीं मानेगा तो वह अल्प-विकसित देशों के लिए सहायता वाले समझौते भी नहीं करेगा।

विश्व व्यापार संगठन दुनिया में व्यापार के लिए माहौल को बनाने के नाम पर अपने 160 सदस्य देशों की मंत्रीस्तरीय बैठक आयोजित करता है। बाली में हुई इस बैठक से पहले यह तय था कि वहां डब्ल्यू.टी.ओ. द्वारा तय 10 बिन्दुओं पर एक सर्वसम्मत समझौता होना है। इन दस बिन्दुओं में से एक बिन्दु ऐसा था, जो भारत के किसानों और उन 85 करोड़ लोगों के जीवन पर सीधे असर डालने वाला था, जो अनाज की सरकारी खरीद, नये राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून और खेती के काम के दायरे में आते हैं। डब्ल्यू.टी.ओ. (विशेष तौर पर अमेरिका) यह चाहता था कि सभी देश कृषि क्षेत्र को दी जाने वाली पूरी सरकारी मदद यानी सब्सिडी की राशि को कुल कृषि उत्पादन की कीमत के 10 प्रतिशत से ज्यादा नहीं ले जायेंगे।→

स्वास्थ्य के अधिकार का समय आ गया है

❑ अमर्त्य सेन

प्रश्न : रोजगार का अधिकार और भोजन का अधिकार के बाद क्या आप सोचते हैं कि इस देश में सार्वजनिक स्वास्थ्य के खस्ता आधारभूत ढांचे के चलते स्वास्थ्य सेवा का अधिकार कानून बनाने का समय आ गया है?

उत्तर : बिल्कुल! मैं यह कहना चाहता हूं कि यह अविश्वसनीय है और राज्य से यह करवाना ही होगा। अमीर देशों में एक संभाव्य अपवाद के रूप में अमेरिका को छोड़ दें तो, बाकी सभी राष्ट्र मानते हैं कि उनके नागरिकों के लिए स्वास्थ्य सेवा एक संपूर्ण मूलभूत अधिकार है। वास्तविकता तो यह है कि यदि हम ऐसा एक पृथक् कानून के माध्यम से करते हैं तो इससे स्वयमेव सिद्ध हो जाता है कि हम कितने पिछड़े हुए हैं। यदि विश्व का इतिहास देखें तो दूसरे विश्वयुद्ध की समाप्ति पर यूरोपीय देशों ने अपने सभी नागरिकों को स्वास्थ्य का अधिकार दे दिया था और अन्य कई देशों ने इस दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया था। जापान में तो पहले से ही काफी स्थापित स्वास्थ्य प्रणाली मौजूद थी लेकिन उन्होंने उसमें भी सुधार किया। सिंगापुर, हांगकांग, दक्षिण कोरिया एवं ताइवान में भी यह मौजूद थी। चीन में भी सभी के लिए स्वास्थ्य सेवाएं मौजूद थीं। लेकिन सन् 1979 में उन्होंने इसका अमेरिका की तरह बाजारीकरण कर इसे आवश्यक (अनिवार्य नहीं) बना दिया। साथ ही नागरिकों के स्वयं बीमा खरीदने की बाध्यता रख दी। इस फैसले का परिणाम यह हुआ कि सन् 1979 तक तो 100 प्रतिशत लोग इसके अंतर्गत आते थे, लेकिन बीमा लेने के विकल्प के बाद यह घटकर मात्र 12 प्रतिशत ही रह गया। यह स्वीकारने के लिए कि उनसे गलती हुई है, चीन को 25 वर्ष (1979 से 2004) का समय लगा। इसके बाद उन्होंने पुनः लोगों को इस सेवा के अंतर्गत लेने का प्रयास किया और अब 96 प्रतिशत लोग इसकी परिधि में आ गये हैं।

कोई भी स्वाभिमानी देश इसे सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी मानता है। अतएव यह आश्चर्यजनक है कि भारत सरकार ने कभी इसके बारे में सोचा ही नहीं। एशियाई आर्थिक विकास का सारा ढांचा मनुष्य की क्षमता का विकास ही तो हैं अतः इसे मान्यता दिया जाना सिर्फ विकास ही नहीं, आर्थिक वृद्धि के लिए भी लाभदायक है। इस देश का एकमात्र ध्यान वृद्धि दर पर होने के साथ इसे लंबी अवधि तक इसे बनाये रहने पर है। ऐसे में इस हेतु एक स्वस्थ व शिक्षित जनसंख्या से बेहतर कोई साधन नहीं हो सकता। मैं आपके सवाल पर लौटता हूं; यदि सरकार ऐसा नहीं करती है तो क्या हम सरकार को इसके लिए बाध्य करें कि वह इसे स्वास्थ्य सेवा अधिकार अधिनियम के माध्यम से उपलब्ध कराये। हां! परंतु सरकार ऐसा क्यों नहीं कर रही? यहां तक कि आम आदमी पार्टी ने भी यह मांग नहीं उठाई। यहां मीडिया की भूमिका नजर आती है। सामान्यतया भारतीय मीडिया फिर वह प्रिंट हो या इलेक्ट्रानिक, उसे इस मुद्दे पर अत्यधिक ध्यान देना चाहिए।

प्रश्न : भारतीय प्रकाशनों का 85 प्रतिशत से अधिक राजस्व विज्ञापन से आता है, जिसका पाठक प्रभावशाली व मध्यम आय वर्ग पाठक होता है। अतएव उसका ध्यान उन वर्गों से संबंधित मुद्दों पर होता है, ऐसे में वे गरीब व वंचित समुदाय पर क्यों ध्यान देंगे? आप इस बाधा को कैसे पार कर पायेंगे?

उत्तर : मैं इस संबंध में तीन बातें कहना चाहूंगा—पहली, हां, यह एक समस्या है। दूसरी, विज्ञापन के राजस्व पर भारत की निर्भरता क्या कोई अनूठी बात है। नहीं, ऐसा नहीं है। आप कैसे कह सकते हैं कि यह दक्षिण कोरिया, हांगकांग, सिंगापुर, थाइलैंड, जापान, ब्राजील और मैक्सिको की

→इसका सीधा-सा मतलब यह है कि भारत यदि कुल 100 रुपये का कृषि उत्पादन करता है, तो उसमें सरकारी मदद का हिस्सा 10 रुपये से ज्यादा नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो उस देश के ऊपर व्यापारिक समझौते के तहत जुर्माने सहित अन्य प्रतिबंधात्मक कार्यवाही की जायेगी।

बाली की बैठक में अल्पविकसित देशों को विकसित देशों की तरफ से मदद किये जाने वाले एक बिन्दु का भी प्रावधान था। जिसका मतलब था कि डब्ल्यू.टी.ओ. में शामिल देश इन अल्पविकसित देशों को उत्पादन बढ़ाने के लिए आर्थिक और तकनीकी सहायता करेंगे। इसके अलावा बाली की बैठक में व्यापार के सहजीकरण (ट्रेड फेसिलिटेशन) पर समझौता होगा तकि हवाई अड्डों और बंदरगाहों पर से सरकार का नियंत्रण कम हो। इसका मतलब यह भी है कि हवाई अड्डों और बंदरगाहों का निजीकरण किया जाये, जैसा कि भारत में मुंद्रा बंदरगाह का हो चुका है। इस मामले पर देश के हित दांव पर थे और उम्मीद थी कि राजनीतिक दल अपनी आपसी दीवारें फांद कर भारत सरकार को एक सही निर्णय लेने के लिए प्रेरित करेंगे। पर ऐसा नहीं हुआ। नये समझौते के मुताबिक डब्ल्यू.टी.ओ. की 11वीं बैठक के पहले हर मसले का हल खोजा जाना होगा। तब तक अमेरिका को नया दांव खेलने का मौका मिल जायेगा और भारत और भी ज्यादा दबाव में होगा। *(सप्रेस)*

समस्या नहीं है? विज्ञापनों पर हमारी निर्भरता कोई अनूठी बात नहीं है। सवाल यह है कि समाचार पत्र एक साथ मिलकर कल्पना करें और स्वतंत्र होकर सोचें कि वे विज्ञापनों से मिलने वाले राजस्व से किस प्रकार निपटें। इसे लेकर कोई सम्मेलन होना चाहिए। हमारे यहां एक जीवंत मीडिया है, जिसने कई प्रकार के नवाचार किये हें। वह इस पर भी नये सिरे से सोच सकता है। तीसरा, विज्ञापन देने वाले आपस में प्रतिस्पर्धा में हैं और वे एक समाचार पत्र को दूसरे के खिलाफ लड़ा रहे हैं। समाचार पत्रों के लिए संभव है कि वे विशिष्ट प्रकार के समाचारों के लिए संहिता बनायें और ऐसी संहिता का बनना आवश्यक भी है।

प्रश्न : यह वृद्धि और मानव क्षमता विकास के दो तरफ संबंधों के लिए हैं। आप पहले अंडा या पहले मुर्गी वाली स्थिति से कैसे निपटेंगे?

उत्तर : नहीं, नहीं। यहां पहले अंडा या पहले मुर्गी वाली स्थिति बिल्कुल नहीं है। यह दोनों के विजयी होने जैसी स्थिति है। आप स्वास्थ्य व शिक्षा पर जितना अधिक राजस्व खर्च करेंगे, आपकी वृद्धि दर भी उतनी ही बढ़ेगी। स्वास्थ्य व शिक्षा पर अधिक खर्च से वृद्धि के साथ ही साथ विकास की नींव भी और मजबूत होगी। आप इसे कभी भी और कहीं से भी शुरू कर सकते हैं, यह हमेशा कारगर सिद्ध होगी। आपको किसी एक के नीचे जाने का रास्ता देखने की आवश्यकता नहीं है। मैं जानता हूं कि दुर्भाग्यवश कुछ अर्थशास्त्री इस तरह की बात करते हैं लेकिन यह अर्थशास्त्र के बारे में सोचने का बहुत ही भयानक तरीका है। यह बात सन् 1776 में एडम स्मिथ भी पूर्ण स्पष्टता से कह चुके हैं।

आप उनसे सवाल पूछिए कि वे एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के पैरोकार क्यों हैं? वह इसका जवाब देंगे कि इससे अर्थव्यवस्था आगे बढ़ती है। इसका क्या लाभ है? पहला इससे लोगों की आमदनी बढ़ती है। उच्च आय वर्ग वाले लोग वह कर सकते हैं जो कि वे करना चाहते हैं और सार्वजनिक राजस्व में वृद्धि सरकार को वह सब कुछ करने की अनुमति देती है, जो कि सिर्फ सरकारें ही कर सकती हैं, जैसे कि शिक्षा।

प्रश्न : पर भारत में तो आपके सामने एक असामान्य स्थिति है। जहां पर सरकार शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसे क्षेत्रों से व्यावहारिक रूप से अनुपस्थित है और इसे निजी क्षेत्र को सौंप दिया है। वह अपनी शक्ति स्टील निर्माण और तेल की सफाई में दिखाती है जिसे कि निजी क्षेत्र के लिए छोड़ देना चाहिए।

उत्तर : यह अस्पष्ट सोच का द्योतक है। आपको अपनी अस्पष्ट सोच को स्पष्ट करना होगा। मैं जब भी यहां आता हूं, बहुत सारे लोग मुझसे कहते हैं सरकार तो सभी काम तो नहीं कर सकती। अतएव शिक्षा एवं स्वास्थ्य को निजी क्षेत्र के लिए छोड़ देना चाहिए। उदाहरणार्थ वे यह देख ही नहीं पाते कि भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर किये जाने वाले खर्च में सरकार का हिस्सा, प्रतिशत के हिसाब से दुनिया के तीन न्यूनतम देशों में है। इसमें हमारे साथी देश हैं, हैती और सिअरा लिओन! हम चीन द्वारा स्वास्थ्य सेवाओं पर किये जाने वाले खर्च का एक चौथाई खर्च करते हैं। हम हमारे सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 1.2 प्रतिशत स्वास्थ्य पर खर्च करते हैं जबकि चीन 3 प्रतिशत के करीब और इस बात का कोई सबूत नहीं है कि निजी क्षेत्र इससे बेहतर कर सकता है।

मूलभूत स्वास्थ्य सुरक्षा के स्तर पर यह इस तरह कार्य नहीं करता। हस्तक्षेप करने वाली योजनाएं भी रोकथाम वाली दवाइयों या रोकथाम वाली स्वास्थ्य देखभाल की व्यवस्था नहीं करतीं। लेकिन यदि आप भयंकर बीमारी की चपेट में आ जायेंगे तो, सरकार आपके उपचार के लिए धन देती है, जो कि अक्सर निजी अस्पताल को ही जाता है। यह सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा चलाने का कोई तरीका नहीं है।

और यह संपूर्ण विचार कि सरकारें कुछ नहीं कर सकतीं, इस संदर्भ में आपको तमिलनाडु, केरल और हिमाचल प्रदेश जैसे उदाहरणों की ओर देखना चाहिए। बहुत समय पहले जब हम उनके बारे में विमर्श कर रहे थे तो मुझे बताया गया था कि ये टिकाऊ नहीं हो सकता। क्योंकि केरल में एक बरीब अर्थव्यवस्था है। परंतु अब यहां भारत में सर्वाधिक खर्च कर सकने वाली प्रति व्यक्ति आय है। वही चीज जो आपके जीवन की गुणवत्ता सुधारती है, वही आपका आर्थिक विकास भी बढ़ाती है और ऐसी कहानी आप कभी नहीं सुनेंगे। आप सुनेंगे कि (नरेन्द्र) मोदी ने उसके राज्य की वृद्धि दर को इस तरह रूपांतरित किया कि वहां की वृद्धि दर अन्य राज्यों से अधिक है। हमारे यहां हाल ही में एक समुद्री तूफान आया जो करीब एक माह तक चर्चा में बना रहा। लेकिन इसका उल्लेख तूफान आने के पहले ही दिन बंद हो गया जब सरकार दस लाख से ज्यादा लोगों को तट से दूर ले आयी। यह समुद्री तूफान केटरीन से पांच गुना बड़ा था। हमारी समस्या यह है कि हमने मन में बैठा लिया है कि सरकार कुछ नहीं कर सकती और हमें सब कुछ निजी क्षेत्र को दे देना चाहिए, उसके लिए अतिरिक्त धन का प्रावधान करना चाहिए और स्वयं को ऐसे फंदे में फंसा लेना चाहिए, जिससे निकल ही न पायें।

प्रश्न : हाल के चुनावों में कुछ रुचिकर बातें सामने आयी हैं। यहां पर एक दल एक सिविल सोसाइटी आंदोलन से गठित हुआ जिसने मतदाताओं की कल्पना पर कब्जा किया और दूसरी ओर हम मध्य एवं दक्षिणमार्गी राजनीति की पैरोकार भाजपा की सफलता भी देख रहे हैं। आप इसे किस तरह देखते हैं।

उत्तर : प्रजातंत्र की प्रक्रिया बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि किस तरह

के मुद्दे सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र में लाये जाते हैं और चुनावों के संदर्भ में उन पर विचार-विमर्श होता है। दिल्ली का चुनाव इसलिए अधिक रुचिकर था, क्योंकि इसमें ऐसे अनेक मुद्दे लाये गये जिनकी कि अतीत में लोगों ने अवहेलना की थी। पर इसमें वे अनेक मुद्दे नहीं आये जिन पर हम बहुत जोर दे रहे थे। इसमें शिक्षा की अनदेखी हुई और सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं और ऐसे ही अन्य अनेक मुद्दों पर अधिक बातचीत नहीं हुई। इसका अधिकतर ध्यान विद्यमान सेवाओं को प्रभावशाली ढंग और भ्रष्टाचार रहित रास्ते से पहुंचाने पर केन्द्रित था।

यह भी महत्त्वपूर्ण है परन्तु मैं चाहता था कि व्यापक कार्यसूची पर बातचीत होती। हालांकि लोगों को सब कुछ नहीं मिल सकता और विशेषकर एक बार में तो कतई नहीं। परंतु मुझे खुशी है कि आम आदमी पार्टी (आप) ने चुनाव की राजनीति की ओर लोगों का ध्यान खींचा। तथ्य तो यह है कि वे लोगों का ध्यान धर्म एवं जाति के बजाय इन मुद्दों की ओर ले जाने में सफल हुए। यह एक बहुत ही सकारात्मक बात है। यह भी एक सच्चाई है कि इन मुद्दों में पड़े बिना उन्होंने दिल्ली के कई इलाकों में जीत हासिल की।

बाकी के चुनाव अप्रत्याशित नहीं थ; यें परिणाम पारंपरिक राजनीति जहां धर्म और जाति अपनी भूमिका अदा करते हैं, से जुड़े हुए थे। बीजेपी स्वयं को ऐसे दल के रूप में प्रस्तुत कर पाने में सफल रही कि वह ताकतवर है। जबकि उनके नेतृत्व की प्रकृति ने लोगों के, जिनमें मैं भी शामिल हूं, के मन में गंभीर सवाल खड़े किये हैं। वहीं कांग्रेस तो भटकती (पतवार विहीन) नजर आ रही थी। क्या यह इस बात का सूचक है कि अगले आम चुनाव में क्या होने वाला है? क्या यह कांग्रेस के सजग हो जाने का समय है? वैसे अभी भी यह स्पष्ट नहीं है कि क्या कोई कांग्रेस को जगा सकता है। *(सप्रेस)*

डिप्रेशन में डूबता भारत का भविष्य

❑ आदिल खान

वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन (डब्ल्यू. एच. ओ.) की ताजा रिपोर्ट बड़ी ही हैरानी पैदा करने वाली है। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत की लगभग एक तिहाई से भी अधिक आबादी डिप्रेशन से ग्रसित है। डिप्रेशन से ग्रसित आबादी में सभी वर्ग एवं तबके के लोग यानी बच्चे, जवान और बुजुर्ग शामिल हैं। पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं इस रोग से ज्यादा ग्रसित हैं। भारत में डिप्रेशन दसवीं सामान्य बीमारी है और यह लगातार भयावह रूप धारण करती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार डिप्रेशन की रफ्तार यदि इसी तरह से बढ़ती रही तो कुछ ही वर्षों में यह भारत की दूसरी सामान्य बीमारी बन जायेगी। डिप्रेशन से ग्रसित व्यक्ति के मन में गलत एवं नकारात्मक विचार जन्म लेते हैं और वह परिवार व समाज से दूर होता चला जाता है। अक्सर देखा जाता है कि डिप्रेशन का रोगी सुसाइड की ओर खिंचा चला जाता है।

बहुत हैं कारण : भारत में डिप्रेशन की मुख्य वजह महँगाई और आर्थिक कमजोरी है। 'आमदनी अठन्नी और खर्चा रुपय्या' वाली कहावत यहां पर चरितार्थ हो रही है। बढ़ती हुई महँगाई ने सभी तबकों की बजट गड़बड़ा दी है। इस महँगाई ने आम आदमी की कमर तोड़ दी है। डिप्रेशन के अन्य कारणों में बढ़ता भ्रष्टाचार, युवा बेरोजगारी, क्राइम, महिला शोषण, पारिवारिक विघटन, जमीन-जायदाद का आपसी विवाद प्रमुख हैं। समाज और परिवार में हो रहे बदलावों के कारण छोटे-छोटे बच्चे भी मानसिक तनाव से ग्रसित होते जा रहे हैं। अभिभावकों में बिगड़ते संबंध भी इसका एक कारण है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का ताजा सर्वे : डब्ल्यू. एच. ओ. के हालिया सर्वे से स्पष्ट हुआ है कि अन्य देशों की तुलना में भारत डिप्रेशन के मामलों में शीर्ष स्थान पर है। डब्ल्यू. एच. ओ. ने 18 देशों के तकरीबन 90 हजार लोगों का सर्वे किया था। इस सर्वे में पता चला है कि भारत में सबसे ज्यादा 36% लोग डिप्रेशन (मानसिक तनाव) में जी रहे हैं। एक तरह से कहा जाए तो देश में हर तीसरा व्यक्ति डिप्रेशन से ग्रसित है। डब्ल्यू. एच. ओ. के सर्वे के मुताबिक फ्रांस 32.3% के साथ दूसरे, अमेरिका 30.9% के साथ तीसरे स्थान पर डिप्रेशन का दंश झेल रहे हैं। सर्वे में सबसे ज्यादा आश्चर्य की बात यह है कि भारत से ज्यादा आबादी वाले विकासशील देश चीन में डिप्रेशन की अनुपात दर सबसे कम है और वह इस मामले में सबसे आखिरी पायदान पर है। चीन में डिप्रेशन से पीड़ितों की आबादी मात्र 12% है।

डिप्रेशन पर विराम : डिप्रेशन से अपने व अपने परिवार को बचाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को मैनेजमेंट स्किल सीखनी पड़ेगी। यदि मैनेजमेंट स्किल का सही उपयोग किया जाये तो बजट भी नहीं गड़बड़ाएगा, साथ ही आर्थिक समस्या से भी छुटकारा मिल जायेगा। सरकारी नौकरी की अपेक्षा स्वरोजगार बेरोजगारी दूर करने का बेहतर विकल्प साबित हो सकता है। आपसी सहयोग और प्रेम व्यवहार को अपनाकर तमाम तरह के झगड़ों व विवादों से होने वाले मानसिक तनाव से बचा जा सकता है। हमें इस बात पर भी गौर करना होगा कि तनाव किसी समस्या का हल नहीं है। इसीलिए हमें खुश रहने के ज्यादा-से-ज्यादा अवसर तलाशने चाहिए। सभी को घर में एक स्वस्थ वातावरण बनाना चाहिए। ❑

वृद्धा पेंशन : एक मानवीय उत्तरदायित्व

❑ भारत डोगरा

अभाव से सर्वाधिक पीड़ित परिवार व व्यक्तियों के रूप में हमें वृद्ध व बहुत कमजोर नागरिकों से मिलवाया जाता है। पूछने पर पता चलता है कि इनके परिवारों के युवा सदस्य या तो प्रवासी मजदूर के रूप में बाहर गये हैं या वे स्वयं इतने निर्धन हैं कि अपने वृद्ध माँ-बाप की उचित देखरेख नहीं कर पा रहे हैं।

इस दारुण स्थिति से बचने का एक कारगर उपाय हे कि पेंशन के माध्यम से वृद्ध नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा को मजबूत किया जाये। यदि प्रत्येक वृद्ध नागरिक को प्रतिमाह लगभग 2 हजार रुपये की पेंशन निश्चित तौर पर मिल जाये तो इससे देश के करोड़ों वृद्ध नागरिकों को बहुत राहत मिल सकती है। इसी मांग को लेकर पिछले दो वर्षों में पेंशन परिषद ने राष्ट्रव्यापी अभियान चलाया है। चाहे सत्ताधारी हों या विपक्ष, सभी यह कहते रहे हैं कि पेंशन परिषद की मांगे बहुत वाजिब हैं और जरूरी हैं। पर अभी इंतजार इस बात का है कि इसके लिए जरूरी संसाधन कब उपलब्ध करवाये जायेंगे।

देश के कई विख्यात सामाजिक कार्यकर्ताओं व जनसंगठनों ने मिलकर पेंशन परिषद को पेंशन सुधार का मुख्य मंच बनाया है। पेंशन परिवार के अनेक धरने-प्रदर्शनों व मांग-पत्रों के बाद प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने ग्रामीण विकास मंत्री को पेंशन सुधार की संभावनाएं तलाशने को कहा। जयराम रमेश द्वारा तैयार किये गये दस्तावेज में स्वीकार किया गया है कि पेंशन देने वाले केन्द्रीय सरकार के राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम में बहुत सुधार की जरूरत है।

पेंशन परिषद ने पेंशन सुधार के लिए मुख्य रूप से छः मांगें उठाई हैं। इसकी एक मुख्य मांग यह है कि इस समय जो न्यूनतम मजदूरी तय है, उससे आधी राशि को पेंशन देने का आधार बनाया जाये। और किसी भी हालत में कम से कम 2 हजार रुपये प्रतिमाह की दर से पेंशन भुगतान किया जाये। बाद के वर्षों में जैसे-जैसे कीमतों में वृद्धि के साथ सरकारी कर्मचारियों को दी जाने वाली पेंशन में वृद्धि होगी, उसी अनुपात में इस पेंशन में भी वृद्धि की जाये।

पेंशन परिषद की यह मांग भी बहुत उचित मांग है कि गरीबी रेखा के ऊपर-नीचे के विवाद में पड़े बिना सभी वृद्ध नागरिकों को पेंशन दी जाये। इसके दायरे से केवल वे लोग बाहर रखे जायेंगे जिनके लिए पहले से इससे अधिक पेंशन तय है (जैसे कि सरकारी कर्मचारी हैं) या वे व्यक्ति जो वृद्धावस्था में भी आयकर के दायरे में आने जितनी धनराशि कमा रहे हैं। आगे सवाल यह भी है कि कितनी आयु के व्यक्ति को वृद्ध माना जाये। सरकार 60 वर्ष व उससे अधिक आयु के लोगों को सामान्यतः पेंशन की दृष्टि से वृद्ध मानती है। पर पेंशन परिषद का मानना है कि कमजोर वर्ग के लोगों में वृद्धावस्था और पहले आरंभ होती है, अतः 50 से 55 वर्ष की आयु वर्ग के बीच नागरिक को यह पेंशन उपलब्ध होनी चाहिए। यह मांगें बहुत न्यायसंगत हैं और सरकारी तंत्र भी यह स्वीकार कर रहा है। अब बहस संसाधनों की उपलब्धि पर आकर ठहर गयी है। पेंशन परिषद ने इस बारे में भी कई विशेषज्ञों की राय प्रस्तुत की है कि संसाधन किस तरह जुटाए जा सकते हैं।

परिषद का मानना है कि पेंशन की इस नई व्यवस्था के लिए धनराशि नागरिकों से नहीं लेनी चाहिए, अपितु इस धनराशि की व्यवस्था सरकार अन्य स्तरों पर कर सकती है। इस तरह से सभी जरूरतमंदों की पेंशन की व्यवस्था करने में अनेक गरीब व विकासशील देश जैसे बोलीविया, लेसोथो, नामीबिया, बोत्सवाना, दक्षिण अफ्रीका, केन्या व नेपाल पहले ही महत्त्वपूर्ण कदम उठा चुके हैं। इनमें से कुछ देशों की अपेक्षा भारत की क्षमता पर्याप्त संसाधन जुटाने में बेहतर है। तो फिर हम जरूरतमंद वृद्ध नागरिकों को पेंशन देने की इस जिम्मेदारी को निभाने में पीछे क्यों रहें?

दूसरी ओर यदि पेंशन परिषद की सभी मांगों को सरकार ने स्वीकार नहीं किया व अपेक्षाकृत कम संसाधनों की राह निकाली, तो राजस्थान व पुडुचेरी जैसे कुछ राज्यों ने जो सीमित सुधार किये हैं उससे कुछ राह निकल सकती है। राजस्थान में पेंशन सुधार का जो मॉडल अपनाया गया, उससे भी लाखों अतिरिक्त वृद्ध नागरिकों को कुछ महीनों में ही पेंशन उपलब्ध करवाई गयी।

यदि केन्द्रीय सरकार भी अपने राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम में सुधार करती है तो यह राशि 500 रुपये तक तो अवश्य बढ़ जानी चाहिए। यदि इतनी ही राशि राज्य सरकार अपनी ओर से जमा कर दे तो प्रत्येक वृद्ध नागरिक को प्रति माह 1000 रुपये की पेंशन तो सुनिश्चित हो ही सकती है। कम से कम फिलहाल में इतना तो किया ही जाना चाहिए।

यह भी मौजूदा स्थिति में अपने आप में एक बड़ा सुधार होगा क्योंकि इस समय तो जो वृद्ध नागरिक मुख्य रूप से असंगठित क्षेत्र में हैं उनमें से 10 प्रतिशत को भी 1000 रुपये की मासिक पेंशन नहीं मिल रही है। उम्मीद है कि निकट भविष्य में इस बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हासिल हो सकती है। इसके साथ विकलांगता के आधार पर दी गई पेंशन में व एकल महिलाओं को दी जाने वाली पेंशन में कुछ सुधार प्रस्तावित हैं, जिनकी बहुत जरूरत है।

वैसे तो वृद्ध नागरिकों की भलाई के लिए बहुपक्षीय सुधार जरूरी हैं पर फिलहाल पेंशन से सामाजिक सुरक्षा की सर्वाधिक उम्मीद बनी है। सरकार व विपक्षी दलों, केन्द्र व राज्य सरकारों, अधिकारियों व सामाजिक कार्यकर्ताओं सबको आपसी सहयोग से प्रयास करने चाहिए कि निकट भविष्य में यह उम्मीद पूरी हो सके। *(सप्रेस)*

क्रान्तदर्शी अच्युत पटवर्धन

❑ चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

स्वतंत्रता आंदोलन की अस्मिता के प्रतीत स्व. अच्युत पटवर्धन का जन्मशताब्दी वर्ष 5 फरवरी, 2004 से मनाया गया था। अच्युतजी का निधन उनके जन्म-दिवस पर ही, यानी 5 फरवरी, 1992 में वाराणसी में हुआ। उनका श्राद्ध नहीं हुआ था और उनकी जयंती या पुण्यतिथि कभी, किसी ने मनायी हो, यह भी सुनने में नहीं आया। यह उसके लिए स्वाभाविक ही है जो किसी पद पर नहीं रहा हो, सत्ताकांक्षी न रहा हो, ब्रह्मचारी हो और जिसके अनुयायी, शिष्य, उत्तराधिकारी या उत्तरक्रिया के अधिकारी न हों। यही उनकी विशेषता थी।

अच्युत पटवर्धन ने अपनी एम. ए. तक की पढ़ाई पूरी करने के बाद 1932 तक अर्थशास्त्र का अध्यापन किया था। 1932 में ही महात्मा गांधी के सत्याग्रह में वे जेल गये थे। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भूमिगत रहकर उन्होंने आंदोलन जारी रखा, जबकि सारे ज्येष्ठ नेता पकड़े गये थे। अच्युतजी को पकड़ने के लिए ब्रिटिश सरकार ने तीन लाख रुपये का इनाम घोषित किया था, फिर भी उन्हें पकड़वाकर इनाम जीतने की इच्छा किसी ने नहीं दर्शायी और तीन साल तक वे भारत छोड़ो आंदोलन चला सके। इसी दरम्यान उन्होंने महाराष्ट्र के महाड़, नांदुरबार और सतारा जिलों में जनशक्ति के आधार पर आंदोलन को पूरी तरह जीवित रखा। सतारा जिले में 'प्रति सरकार' या 'पत्री सरकार' स्थापित करने में अच्युतजी का सबसे अधिक सहयोग रहा था। उन्हें उस समय लोग 'सत्याग्रह सिंह' या 'सातारा के शेर' के नाम से जानते थे। वे कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य भी रहे, जो उस जमाने में काफी सम्मानित पद माना जाता था। वे सोशलिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया के सस्थापक सदस्य रहे और अंत में 1950 में वे राजनीति से निवृत्त हो गये। वे राजनीति से क्यों निवृत्त हुए? इस बाबत उन्होंने अपने परम मित्र जयप्रकाशजी को जो चिट्ठी लिखी थी, वह एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। उस पत्र में उन्होंने लिखा था कि ''अब तो सत्ता की राजनीति ही हमारा ध्येय बन गया है। हमारी सोशल फिलॉसफी, पॉवर फिलॉसफी बन गयी है और किसी भी कीमत पर सत्ता पाना लक्ष्य हो गया है। इसी लक्ष्य के आधार पर किसी भी संस्था की शक्ति नापी जा रही है। पार्टी के बाहर या अंदर यही भावना जाग रही है, उसके कारण व्यक्ति-पूजा पनप रही है और सारा सामाजिक जीवन कलुषित हो गया है। सत्ता पाने के लिए लोक-जीवन में निर्दयता, निष्ठुरता, बेरहमी पनप रही है। भाईचारा, दूसरों के प्रति उदारता खत्म-सी हो रही है और इसे बदलने के लिए कोई रेडीमेड पर्याय भी नहीं दिख रहा है।''

इस पत्र में आज की परिस्थिति का भी दर्शन होता है। अच्युतजी सत्ता की राजनीति से ऊब गये थे, लेकिन सारे राजनीतिक पक्ष सत्ता पाने के लिए ही काम करना चाहते थे। इस संदर्भ में हमें यह समझ लेना चाहिए कि जवाहरलालजी चाहते थे कि अच्युतजी 'युनाइटेड नेशन्स' (संयुक्त राष्ट्रसंघ) में जाने वाले भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य बनें, या रोम (इटली) में भारतीय प्रतिनिधि बनें। अच्युतजी ने दोनों बार इनकार किया था। जब लोकनायक जयप्राकाश नारायण के दूसरे स्वतंत्रता आंदोलन से सत्ता-परिवर्तन हुआ, तब जयप्रकाशजी की इच्छा थी कि अच्युतजी भारत के राष्ट्रपति बनें। जेपी चाहते थे कि आजादी के आंदोलन से जुड़ी हुई भारत की आम जनता और मिट्टी से लगाव रखने वाला दार्शनिक भारत का राष्ट्रपति बनेगा, तो भारत का सर दुनिया में ऊंचा होगा। राधाकृष्णन तत्त्वज्ञानी थे, परंतु उनका आमजन और आजादी के आंदोलन से सीधा संबंध नहीं था। लेकिन अपने परम मित्र जेपी का वह आग्रह भी अच्युतजी ने नहीं माना।

अच्युतजी अपने काका सीताराम पंत के दत्तक पुत्र थे, जिनके पास काफी सम्पत्ति थी। उनकी मृत्यु के बाद अच्युतजी ही उस सारी सम्पत्ति के वारिस थे, लेकिन अच्युतजी ने उस सम्पत्ति का कभी खुद के लिए उपयोग नहीं किया और न ही उस पर हक दर्शाया। शुरू से ही पटवर्धन परिवार पर एनी बेसेन्ट और जे. कृष्णामूर्ति का प्रभाव था। राजनीति से स्वेच्छया निवृत्ति लेने के बाद अच्युतजी कृष्णमूर्ति के ही विचारों से जुड़े रहे। 'थिओसोफिकल सोसायटी' से भी जुड़े रहे, लेकिन पार्टी की चौखट में या संस्था की चारदीवारी में बंध नहीं सके। वे सही माने में 'क्रान्तिकारी' थे। उनसे जब किसी ने कहा कि आजादी के आंदोलन में आपको जो सहना पड़ा उसके बारे में आप क्यों नहीं लिखते, तब उन्होंने जवाब दिया था कि, ''आजादी के लिए अन्य देशों के लोगों ने जो बलिदान किया है, सितम सहे हैं, उसकी तुलना में हमने कुछ भी नहीं सहा, न किया।''

जिनकी त्याग का प्रचार करके उसका फल बटोरने की वृत्ति नहीं होती, उनके लिए त्याग भी सहज भावना, सहज जीवन का अंश होता है। ऐसे व्यक्तियों में ही अच्युतजी थे। क्रांति सिर्फ उथल-पुथल नहीं है, उसका अपना एक ध्येय होता है। यही अच्युतजी की वृत्ति थी। जब वह ध्येय धुँधला हो गया तो वे राजनीति से अलग हो गये। दादा

धर्माधिकारी से उनकी मित्रता थी। अच्युतजी के कोई अनुयायी नहीं थे। वे किसी को अपना पैर भी नहीं छूने देते थे; इस सबमें उन्हें समाज की अवनति के लक्षण दिखते थे।

मेरी संविधान पर लिखी अंग्रेजी पुस्तक के लिए अच्युतजी ने 1978 में प्रस्तावना लिखी थी। इसमें उन्होंने कहा था कि ''हम यह अनदेखा नहीं कर सकते कि समाज में जो निहित स्वार्थ है, अंधश्रद्धाएं हैं और जाति के आधार पर दम्भ है, उनके दबाव के कारण सारी प्रगति ठिठक रही है। लाखों भारतीय, जिनके जन्म का स्वागत नहीं है, रोज जनमते हैं, अमानवीय परिस्थितियों में जीते हैं और मरते हैं। उनके जन्म का आनन्द नहीं होता और मृत्यु का दुःख भी नहीं होता। सारे ऐसी परिस्थितियों में जीते हैं, जहां स्त्री-पुरुष को उनके सशक्त या प्रभावी मुद्दों को दर्शाने का अवसर ही नहीं मिल रहा है। यह परिस्थिति सम्पत्ति की मिलकियत, जनसंख्या के विस्फोट, सामाजिक अन्याय और निरर्थक रूढ़ियां या परम्परा जो धर्म के नाम पर पाली जाती हैं, उसकी उपज है। ये सारे उदाहरण हमारी रुग्ण सामाजिक मानसिकता के ही नमूने हैं। इस सारी परिस्थिति में परिवर्तन हो यही असली चुनौती है। इसे पढ़े-लिखे नौजवान और युवतियां क्यों शक्तिहीन और दब्बू बनकर सह रहे हैं? वे बगावत या विद्रोह क्यों नहीं करना चाहते? भारतीय सामाजिक जीवन में संघर्ष करने की मानसिकता ही नहीं दिखायी देती, जिसके कारण मनुष्य को प्रतिष्ठा प्राप्त हो सके। राजनीतिक नीतियों का और विचारों का दिवाला निकल चुका है तथा कथित स्वयंसेवी संस्थाएं या तो सरकार पर ही निर्भर हैं या फिर निस्तेज हो गयी हैं। शिक्षा द्वारा कोई प्रेरणा ही नहीं मिल रही है। भारतीय मानसिकता या भारतीय मन ही नहीं रहा और यह सारा समाज सिर्फ देख रहा है और सह रहा है।'' यह अच्युतजी जैसे समाज-परिवर्तन चाहने वाले क्रांतिकारी के विचार हैं, जो आज भी प्रेरणा दे सकते हैं।

अपने जीवन के आखिरी दिनों में अच्युतजी ने महाराष्ट्र के लिए आदर्श गांव की योजना बनाने में मदद की थी। पंचायतराज व्यवस्था पर उनका विश्वास था। इतना ही नहीं, शुरू में अण्णा हजारे ने जो ग्राम-सुधार या भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई या सत्याग्रह शुरू किया था, उसके स्रोत अच्युतजी ही थे। वे मानते थे कि अन्याय और भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ने वाला क्रांतिकारी सत्याग्रही खुद के जीवन में 'सत्याग्रही' होना चाहिए। जीवन में जिसने कभी किसी पर अन्याय न किया हो, कभी भ्रष्ट व्यवहार न किया हो, वही सदाचारी इन समस्याओं के खिलाफ सत्याग्रह करने का अधिकारी है। उन्होंने राजनीति छोड़ दी थी, क्योंकि वह समाज-परिवर्तन का साधन नहीं बन सकती थी। राजनीति छोड़ते समय जब अन्य पर्याय नहीं दिखायी दिया तो वे कृष्णमूर्तिजी के आध्यात्मिक विचारों से जुड़े जो पलायनवाद नहीं था, बल्कि नये मार्ग की खोज थी। शासन-शक्ति, कानून की शक्ति, दण्ड-शक्ति, शस्त्र-शक्ति या पैसे की शक्ति पर उनका विश्वास नहीं था। उनका विश्वास 'लोकशक्ति' पर था। वही उनके भारत छोड़ो आंदोलन का पाथेय था। उन्होंने अद्यतन भारत का एक सपना देखा था, जहां कोई भी दूसरे का शोषण नहीं करता हो, जहां पैसा या डंडे का राज न हो और उनसे डरकर कोई जीता न हो; परस्पर सहयोग की भावना जागती हो और समता, बंधुता और अपनेपन के आधार पर समाज की रचना हुई हो।

यही भावना उनकी मुक्ति के आंदोलन का अधिष्ठान थी। बंधन का अभाव यानी स्वतंत्रता, यह पूंजीवादी समाज की आधारभूत व्याख्या है। सभी को समान अवसर, सुरक्षा की समान गारंटी—स्वतंत्रतावादियों की आजादी की यह व्याख्या, व्यवहार में सभी को समान गुलाम बनाने वाली हो जाती है। इसलिए सबके प्रति उत्कृष्ट प्रेम रखकर स्वेच्छा से अपने स्वार्थ को रोकना, उस पर पाबंदी रखना, यह भूमिका स्वतंत्रता की कल्पना में कहीं-न-कहीं नजर आनी चाहिए—ऐसा वे मानते थे। जो सत्य का असत्य से, सिद्धांतों का अपसिद्धांतों से या त्याग का भोग से समझौता नहीं चाहता, उसकी त्याग की भूमिका भी उत्कृष्ट प्रेम पर आधारित होती है। आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा सभी प्रकार के अन्याय से, देहात में रहने वाले गरीब, अनपढ़, सामान्यजन जिन्हें कभी संपूर्ण नागरिक नहीं, बल्कि मानव ही नहीं माना गया है, वे आदिवासी, दलित, गिरिजन, हरिजन और घर तथा घर के बाहर दोयम नागरिक बनी महिलाएं, इन्हें संपूर्ण मुक्ति मिले और यह मुक्ति-आंदोलन समाज के उत्कृष्ट प्रेम पर आधारित हो, यही उनकी स्वतंत्रता की परिभाषा थी। अच्युतजी की 'उत्कृष्ट प्रेम' भावना की संकल्पना ही असली आध्यात्मिक भावना है। अच्युतजी ने अद्यतन भारत का जो सपना देखा था, उसे पूरा करने की शक्ति या बुद्धि हममें न भी हो, तो भी कम-से-कम उसे पैरों से रौंदा न जाये, कुचला न जाये, यह संकल्प भी यदि हम उनकी जन्मशताब्दी के निमित्त से करें, तो भी कुछ कम नहीं है। *('लोकतंत्र, न्याय एवं राहों के अन्वेषी' से)*

सर्व सेवा संघ प्रकाशन विश्व पुस्तक मेला में

नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा 13 से 24 फरवरी, 2014 को नयी दिल्ली में आयोजित 'विश्व पुस्तक मेला' में सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी पहली बार भाग लेने जा रहा है।

गतिविधियां एवं समाचार

ग्रामस्वराज्य प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

सुपौल जिला अंतर्गत मरौना प्रखंड के चन्द्रगढ़ विनोबा आश्रम स्व. बलदेव स्मृति परिसर में तीन दिवसीय ग्रामस्वराज्य प्रशिक्षण शिविर 16,17,18 दिसंबर, 2013 को सम्पन्न हुआ। शिविर का समापन 18 दिसंबर को 2 बजे हुआ। शिविर का उद्घाटन वरिष्ठ गांधीवादी डॉ. रामजी सिंह एवं श्री तपेश्वर भाई ने सर्वधर्म सामूहिक प्रार्थन से किया। विभिन्न विषयों की चर्चा में जिले के विभिन्न प्रखंडों से 15 महिलाएं एवं 35 युवाओं ने भागीदारी की। अंतिम दिन भूदान किसानों की समस्या पर आम सभा की गयी और निम्न निर्णय लिये गये :

1. ग्रामसभा संगठन कर नवीनीकरण की जाय, 2. बनी ग्रामसभा के प्रतिनिधि को लेकर प्रखंड सभा की जाय, 3. गांव के झगड़े-झंझट ग्रामसभा में ही निपटाये जायं, 4. ग्रामसभा की खेती की उपज से अनाज इकट्ठा किया जाय, 5. गांव की जल-जंगल-जमीन पर ग्रामसभा की हो, इसका अधिकार लिया जाय, 6. बेदखली भूदान जमीन पर कब्जा किया जाय, 7. बिहार बजट ग्रामदानी ग्रामसभा को पंचायती राज अधिकार ली जाय, 8. ग्रामसभा में कम्पोस्ट/जैविक/खाद बनाने की विधि बतलायी जाय, 9. गांव मेरा साफ-सुथरा रहे, इसके लिए स्वावलंबन के तरीके से शौचालय निर्माण करवायी जाय, 10. ग्रामीण क्षेत्र में अंधविश्वास में लोग जीते हैं, साथ ही दहेज देकर शादी-विवाह करते हैं। ऐसा न करने हेतु लोगों को जागरूक किया जाय।

–सूर्यनारायण भारती

लोक स्वराज्य जन-जागरण यात्रा

2 अक्टूबर, 2013 को गांधी जयंती का भव्य कार्यक्रम बिहार में जयप्रकाश नारायण द्वारा संस्थापित मुजफ्फरपुर विकास मंडल के सचिव श्री रमेश पंकज तथा गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली की निर्देशिका डॉ. मणिमाला के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित किया गया। इस संदर्भ में प्रातः 6 से 8 बजे तक ग्राम नरौलीसेन, मणिका मुर्रा एवं मुसहरी अंजार टोला में प्रभात फेरी निकाली गयी। कार्यक्रम स्थल और सभा का स्थान था जयप्रभा स्मृति भवन परिसर, जेपी विहार जयप्रकाश पथ, बेला मुजफ्फरपुर (बिहार)।

सभा के व्याख्यान का विषय था 'गांधी का जीवन संदेश और युवओं की भूमिका'। सभा की अध्यक्षता श्री मण्डलेश्वर तिवारी तथा संचालन श्री रमेश पंकल ने किया।

प्रमुख वक्ता के तौर पर हमने गांधी के जीवन-संदेश और युवाओं की भूमिका विषय पर प्रकाश डालते हुए गांधी के जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों, उनकी प्रमुख सीखों, विचारों का विस्तृत विवेचन किया। गांधी कैसा भारत चाहते थे, उस संबंध में भी कुछ खास-खास बातें रखीं।

उसके बाद जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष श्री जगन्नाथ पाण्डेय, समाजवादी जनपरिषद के नेता श्री सच्चिदानंद, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली की ओर से श्री रमण कुमार आदि मित्रों ने अपने विचार रखे। सायं 5 बजे युवाओं ने सांप्रदायिक सद्भाव पर एक लघु-नाटिका प्रस्तुत की। अक्टूबर, 2013 में ही उत्तर प्रदेश के बदायूं जिले में लोक स्वराज्य, ग्रामस्वराज्य संबंधी कार्यक्रम तय हुए। कार्यक्रमों का आयोजन उत्तर प्रदेश सर्वोदय के सक्रिय साथी श्री भगवान सिंह ने किया था।

29 अक्टूबर को बदायूं रेलवे स्टेशन के निकट विद्यावती वैदिक कन्या विद्यालय हाईस्कूल में छात्राओं तथा शिक्षिकाओं के बीच हमारा व्याख्यान हुआ। उसमें गांधी कस्तूरबा के जीवन के प्रेरक प्रसंगों, उनके प्रेरक विचारों, छात्राओं द्वारा कर सकने वाले सत्याग्रह का वर्णन किया गया। श्री भगवान सिंह ने विद्यालय के पुस्तकालय के लिए कुछ पुस्तकें भेंट के लिए रखी थी, उन्हें प्रिंसीपल को भेंट किया गया। शाम को ग्राम नगला सर्की के शिवमंदिर पर गोष्ठी हुई। उसमें यह समझाने का प्रयास किया गया कि जो व्यक्ति तार्किक एवं वैज्ञानिक सोच अपने में विकसित कर सकें, वे ही सच्चे धर्म के उपासक हो सकते हैं। यही दृष्टि रखकर हम सबके हित यानी सर्वोदय के लिए कार्य कर सकते हैं।

30 अक्टूबर को हम नेहरू आदर्श इंटर कॉलेज में थे। गांधी जीवन के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों विशेषकर आज के युग में भी उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण सीखों का सिलसिलेवार वर्णन किया गया।

रात्रि में मजदूरों की बस्ती ग्राम गौटिया में आम सभा हुई। ग्रामीण जीवन सही मायने में समृद्ध, शांति व रोजगार संपन्न तथा स्वावलंबी कैसे हो सकता है, इस पर प्रकाश डाला गया।

30 अक्टूबर को नगला के काली देवी मंदिर में गोष्ठी में चर्चा हुई। व्यापारिक वैश्वीकरण के खतरों को व्यर्थ करने हेतु एकमात्र इलाज स्थानीकरण-ग्रामीकरण है, यह समझाने का प्रयास रहा।

1 नवंबर को रात्रि में श्री भगवान सिंह के घर पर परिवार की बहनों तथा पड़ोस की बहनों की सभा हुई। इसमें विशुद्ध रूप से गृहस्थ जीवन को सफलता की ओर ले जाने हेतु व्यावहारिक बातों, स्त्री-पुरुष परस्पर पूरक हैं, पतिव्रत-पत्नीव्रत धर्म, कर्तव्य ही धर्म है, अधिकार का कोई अस्तित्व नहीं होता, अस्तित्व है सिर्फ कर्तव्य का, आदि विषयों पर चर्चा चली।

–अविनाश चन्द्र

VSI-E-008 For the Year - 2012 to 2014 सर्वोदय जगत : 1-15 फरवरी, 2014 Regd.No. R.N.I.35495/78

बाबा आमटे की दो कविताएं

(एक)

एक कुम्हलाते फूल का उच्छ्वास

मैं सतासी का हूं
एक रीढ़हीन व्यक्ति जो बैठ नहीं पाता
मुरझा रहा हूं मैं पंखुरी-ब-पंखुरी

लेकिन, क्या तुम नहीं देखते
मेरा रक्तस्रावी पराग?
मैं निश्चयी हूं, मगर ईश्वर मदद करे मेरी
कि रत रहा आऊं मैं गहरी हमदर्दी में
जो आदिवासियों की बेहाली से है

वंचित विपन्न आदिवासियों की व्यथा का
किसी भी सत्ता द्वारा अपमान
अश्लील है, और अमानवीय;
सतासी पर
उम्र मुझे बांधे है दासता में
मैं पा चुका हूं असह्य आमंत्रण अपने आखिरी सफर का,
फिर भी मैं डटा हूं।

पाठकों, मत लगाओ अवरोधक अपने आवेग पर
कोई नहीं विजेता
सब के सब आहत हैं, आहत!
एक फूल की इस आह को कान दो!!

(दो)

जब आ रही है लौटने की घड़ी

मैंने नर्मदा से उत्कट प्रेम किया
उसने मुझे लपककर भींच लिया
और
बना लिया अपना

उसे छूकर आती वायु-लहरी
मेरे आकुल उर को बंधाती है ढाढस
उसके प्रवाह में सुर हैं मेरे जीवन का
ताल है, बेसुधी है मेरी, और उन्माद

तट पर उसके मैंने देखा है
धरा और व्योम का आलिंगन
यहीं, करते हुए सुखद सुधियों का
पारायण
बना रहे मेरा और उसका संवाद

जैसे शिशु कोई छोड़ता है
मां की गोद
अनिच्छा और अपरिभाषित
कृतज्ञता के साथ
नर्मदा से लूंगा मैं विदा, भारी मन। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600